देश को ऐसे लोगों की ज़ुरूरत है

अनुज प्रकाशन
इन्द्रप्रस्थ मार्केट, बाबागंज,
प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश
मोबाइल : 09889271781, 09839145000
e-mail : nagendra.anuj1976@rediffmail.com
ruhani.alif@gmail.com

मता-ए-नाज़िश

(नाज़िश-ग्रन्थावली)

भाग-एक

मीर और ग़ालिब एवार्ड से सम्मानित
नाज़िश प्रतापगढ़ी
की रचनाओं का संग्रह

सम्पादक
तल्हा ताबिश
दीपक रूहानी
नागेन्द्र अनुज

Dev ege प्रकाशन

अनुज प्रकाशन
प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश
द्वारा प्रकाशित

मूल्य : 270/-

प्रथम संस्करण : 2010
आवरण : कुमार अतुल
मुद्रक : कैक्सटन प्रेस, इलाहाबाद

फ़ेहरिस्त

सम्पादकों की ओर से

जिसकी शाइरी पर फ़िराक़ गोरखपुरी इज़्हारे-ख़याल कर चुके हों, जिसकी नज़्मों पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व उर्दू-विभागाध्यक्ष, प्रो. एजाज़ हुसैन अपनी राय व्यक्त कर चुके हों, जिसकी किताब पर इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पूर्व उर्दू-विभागाध्यक्ष, प्रो. एहतिशाम हुसैन भूमिका लिख चुके हों, जिसकी ग़ज़लों और नज़्मों पर उर्दू-मासिक 'शायर' के पूर्व सम्पादक एजाज़ सिद्दीक़ी अपना संजीदा मंतव्य प्रकट कर चुके हों, जिसके मज्मूअए-कलाम पर नियाज़ फ़तेहपुरी तम्हीद लिख चुके हों, जिसकी ग़ज़लों और नज़्मों पर ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ' तब्सिरा कर चुके हों और जिसके काव्य-संग्रह पर अली जव्वाद ज़ैदी बहुत कुछ लिख चुके हों, ऐसी अज़ीम शख़्सीयत की ग्रन्थावली पर सम्पादकीय में लिखा भी जाय तो क्या लिखा जाय। छोटा मुँह बड़ी बात। फिर भी यहाँ सम्पादकीय लिखने की औपचारिकता कुछ सूचनाएँ देने के लिहाज़ से की जा रही है।

नाज़िश साहब को सन् **1980** में 'मीर एकेडमी, लखनऊ' की ओर से *'मीर एवार्ड'* तथा **1984** में 'ग़ालिब एकेडमी, दिल्ली' द्वारा *'ग़ालिब एवार्ड'* मिला। आदरणीय नाज़िश प्रतापगढ़ी को मिलनेवाले ये सम्मान किसी भी 'प्रतापगढ़ी' के लिए फ़ख़्र की बात हैं।

नाज़िश साहब का इंतिक़ाल सन् **1984** में हुआ। देखा जाय तो आज लगभग पचीस साल हुए और पचीस साल बहुत होते हैं किसी को भूल जाने के लिए, लेकिन ये प्रतापगढ़ है जिसके साहित्यिक समाज में आज भी रीतिकालीन कवि

आचार्य भिखारीदास के आचार्यत्व पर विमर्श होता है, ये प्रतापगढ़ अभी कवि और मनीषी शिवहर्ष ब्रह्मचारी जी के 'कृष्णायन मानस' को सँजोये हुए है, ये वही प्रतापगढ़ है जहाँ रसज्ञों और कवियों को छविश्याम जी के छन्द याद हैं, ये वही प्रतापगढ़ी फ़ज़ा है जिसकी अदबी नफ़स में नाज़िश प्रतापगढ़ी की नज़्में रूह फूँक रही हैं, ये वही प्रतापगढ़ है जिसके साहित्यिक वातावरण को जीवन भर सजाते-सँवारते थककर अभी-अभी उन्मत्त जी सोये हैं, ये तो वही प्रतापगढ़ है जिसकी शीतल-मंद-सुगंध बयार में आज भी चन्द्रेश 'पागल' के गीतों की मधुरता घुली हुई है। अभी जुमई ख़ाँ आज़ाद की गंगा-जमुनी तहज़ीब ज़िन्दा है, अभी इम्तियाज़ साहब अपनी संजीदा गुफ़्तगू और वैचारिक प्रतिबद्धता के साथ नशिस्तों और मुशायरों की मसनदे-सदारत को वक़ार बख़्श रहे हैं, अभी अनीस देहाती उन लोगों के मुँह पर तमाचा मारने के लिए ज़िन्दा हैं जो फ़िरक़ापरस्ती को अपना धर्म समझते हैं। ऐसे माहौल में हम नाज़िश साहब को कैसे भूल सकते हैं।

नाज़िश साहब की रचनाओं का ये पहला भाग प्रकाशित किया जा रहा है। दूसरे भाग की भी तैयारियाँ हो रही हैं। इंशाअल्लाह, अगली बार हम नाज़िश साहब के उपलब्ध सारे कलामों को समेट सकेंगे। इस सम्पादकीय की शुरूआत में जिन आलोचकों, विद्वानों और शाइरों का हवाला दिया गया है, उनके लेखों को भी अगले भाग में समेटने का प्रयास किया जायेगा। इसके अलावा नाज़िश साहब ने ख़ुद भी तमाम मौज़ूमात पर अपना इज़्हारे-ख़याल किया है, जो कि हमारे लिए दस्तावेज़ की हैसियत रखता है। हम उसे भी प्रकाशित करेंगे।

इस भाग में नाज़िश साहब की ज़ाती ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ ज़ावियों को बहुत संक्षेप में हमारे विशेष आग्रह पर उनकी बेटी मैमूना बेगम ने प्रस्तुत किया है। हमने उनके मज़्मून को बिना किसी संशोधन के ज्यों का त्यों प्रस्तुत किया है। उनकी हिन्दी-उर्दू की मिली-जुली तहरीर नाज़िश साहब द्वारा दिये गये संस्कारों का ही परिणाम है।

इस भाग में हमने नज़्मों और ग़ज़लों को एक साथ पेश किया है। नज़्मों पर हमारा विशेष ध्यान रहा है, क्योंकि ऐसा लगता है कि नाज़िश साहब ने भी

अपने शेरी सफ़र में नज़्मों पर ही ज़ियादा ध्यान दिया है। अगर 'नाज़िशी अंदाज़' को पूरी तरह समझना है तो नज़्में ही उसका ज़रीया हैं। ऐसा लगता है नाज़िश साहब के ज़ेहन में 'ग़ालिब' का ये शेर हरदम मौजूद रहता था कि *'बक़द्रे-शौक़ नहीं ज़र्फ़े-तंगनाए-ग़ज़ल, कुछ और चाहिए वुस्अत मेरे बयाँ के लिए'*। इस भाग में जितनी भी नज़्में दी गयी हैं उनका फॉर्मेट ठीक वैसा ही रखा गया है जैसा मूल उर्दू प्रतियों में है। लम्बे-लम्बे बन्ध(बन्द) एक वैचारिक तारतम्य को प्रदर्शित करते हैं, इसलिए हमने उनसे छेड़छाड़ नहीं की, ताकि विचारों की गति भंग न होने पाये। नाज़िश साहब ने अपनी ग़ज़लों और नज़्मों में बहुत कठिन अल्फ़ाज़ नहीं इस्तेमाल किये हैं। वो उस ज़माने का रोज़मर्रा था, लेकिन आज हर आदमी तक नाज़िश साहब पहुँच सकें, इसके लिए हमने नीचे शब्दार्थों के फुट-नोट भी दिये हैं। हालाँकि वो अर्थ ठीक-ठीक ख़याल की तर्जुमानी कर रहे हैं, इसका दावा नहीं किया जा सकता, लेकिन ख़याल समझने में मदद ज़ुरूर कर सकते हैं।

जिन नज़्मों और ग़ज़लों का रचनावर्ष उपलब्ध था उसको भी साथ में दिया गया है। ऐसा लगता है नाज़िश साहब इस बात के प्रति बेहद जागरूक थे, क्यूँकि लगभग प्रत्येक रचना के साथ उसका रचनावर्ष अवश्य दिया गया है। इससे मुख्यत: दो बातें सामने आती हैं; पहली तो ये कि नाज़िश साहब का अँग्रेज़ी-साहित्य-अध्ययन काफ़ी अच्छा था, क्यूँकि तारीख़ देने की पद्धति अधिकतर अँग्रेज़ी कवियों में ही देखी जाती है। दूसरी बात ये कि इससे किसी भी कवि की रचना साहित्यिक दायरों से बाहर निकलकर एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ की हैसियत रखने लगती है।

नज़्मों और ग़ज़लों को फ़ार्सी-लिपि से देवनागरी लिपि में करने के दौरान वर्तनी के निर्धारण में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ से प्रकाशित मु. मुस्तफ़ा ख़ाँ 'मद्दाह' के शब्दकोश का अनुसरण किया गया है, लेकिन कहीं-कहीं तकनीकी कारणों से पूरी तरह अनुसरण नहीं हो पाया है। हमने वर्तनी-निर्धारण और प्रूफ़-रीडिंग में पूरी सावधानी बरती है, लेकिन यदि कहीं एक भी नुक़्ता छूट गया हो, कोई भूल-चूक हो गयी हो, कोई ख़ामी रह गयी हो तो हम दस्तबस्ता गुज़ारिश करते हैं कि हमें उसकी इत्तिला दी जाय ताकि हम अगले

संस्करण में उसे सुधार सकें।

पृष्ठ **160** पर हमने नाज़िश प्रतापगढ़ी की संक्षिप्त वंशावली दी है। यद्यपि कि इसमें नाज़िश साहब की बहनों का ज़िक्र नहीं हो पाया है जो कि बँटवारे में माँ और अन्य भाइयों के साथ पाकिस्तान चली गयी थीं।

इस ग्रन्थावली के प्रकाशन में जिन लोगों ने हर प्रकार से हमारा विशेष सहयोग किया उनमें मु. ख़ालिद, मु. ज़ुबैर, मैमूना बेगम, मु. शाद, अतिया बेगम, मु. अतीक़, मु. अनस और मु. अनीस साहब हैं। हम तहे–दिल से इनके शुक्रगुज़ार हैं। प्रतापगढ़ के साहित्यिक समाज से हम जिनके विशेष आभारी हैं, उनमें सर्वश्री इम्तियाज़ साहब, डॉ. जलील अहमद सिद्दीक़ी, राजमूर्ति सिंह 'सौरभ' और सुनील प्रभाकर उल्लेखनीय हैं। इनके अलावा छोटे भाई की तरह जो हमेशा साथ खड़ा रहा उस इमरान प्रतापगढ़ी के लिए दुआ करते हैं कि उसे नाज़िश प्रतापगढ़ी का सिर्फ़ 'प्रतापगढ़ी' ही नहीं, बल्कि 'नाज़िशी अंदाज़' भी हासिल हो।

अन्त में हम नाज़िश साहब के ही चार मिस्रों से उनकी ये ग्रन्थावली आपके हवाले करते हैं–

किसी के दर का, किसी रहगुज़र का ज़िक्र नहीं,
जो तुम सुनो तो हम अपनी जबीं की बात करें।
उभर रहे हैं उजाले, निखर रही है हयात,
फ़क़त गुमाँ ही नहीं अब यक़ीं की बात करें।

तल्हा ताबिश
दीपक रूहानी
नागेन्द्र अनुज

मेरे भाईजान

मेरे मामूजान मेरे वालिद साहब (पिता जी)को भाईजान कहते थे और मेरी अम्मी को आपा (दीदी) कहते थे। इसी वज्ह से हम सब भाई-बहन अपनी अम्मी को आपा और वालिद साहब को भाईजान कहकर बुलाया करते थे। भाईजान सीधे-सादे, न्यायप्रिय एवं कर्तव्यों का पालन करनेवाले व्यक्ति थे। भाईजान का व्यक्तित्व प्रभावशाली था। क़द लम्बा, दुबला-पतला शरीर, सर पर घने और लम्बे बाल, माथा चौड़ा और आँखें बड़ी थीं। चाल अति तीव्र थी मगर क़दमों की चाप सुनायी न पड़ती। ज़ोर से नहीं हँसते थे, मन्द-मन्द मुस्कराते और बातचीत बहुत शरीफ़ाना अंदाज़ में अदबी ढंग से करते थे। बातूनी न थे। कुशाग्र-बुद्धि, धैर्यवान, सहनशील और कठोर परिश्रमी थे।

भाईजान का अस्ली नाम मुहम्मद अहमद था, मगर अदबी दुनिया ने उन्हें नाज़िश प्रतापगढ़ी के नाम से जाना। आप शाही घराने से सम्बन्ध रखते थे। क़स्बा प्रतापगढ़ सिटी के तालुक़ेदार हाजी मुहम्मद अस्ग़र की हवेली में **22** जुलाई **1924** ईस्वी को आप का जन्म हुआ । तालुक़ेदार का पुत्र होने के कारण आपके जन्म पर हर्षोल्लास मनाया गया और उपहार के रूप में नौकर-चाकर को जागीरें तक दे दी गयीं। आपके जन्म का उत्सव वर्षों तक लोगों के बीच चर्चा का विषय बना रहा। आपकी माँ का नाम आमिना था। भाईजान के तीन और भाई एवं छः बहनें थीं। स्मरण-शक्ति अच्छी होने के कारण क़ुरआन-उल-शरीफ़ पढ़ने में ज़ियादा समय न लगा। हाफ़िज़ सुब्हान ने क़ुरआन-उल-शरीफ़ याद करवाया। इसके बाद भाईजान ने प्रारम्भिक शिक्षा मदरसे में प्राप्त कर गवर्नमेण्ट कॉलेज में प्रवेश किया। कुछ दिन पी. बी. कॉलेज, सिटी में भी शिक्षा प्राप्त की। लिखने-पढ़ने का बहुत शौक़ था।

बचपन से ही बाप का साया सर से उठ जाने से आप गम्भीर रहा करते थे। परिवार में मुखिया की कमी का बहुत प्रभाव पड़ा। घर में शेरो–शायरी की मह्फ़िल हुआ करती थी। आपको भी लिखने का शौक़ बचपन से ही था। कम उम्र में ही छतरपुर के ज़मींदार इक़्बाल अहमद की पुत्री आक़िला बीबी से वैवाहिक सूत्र में बाँध दिये गये। खेती–बाड़ी कई बीघों में हुआ करती थी, आम के बाग़ात थे। आमदनी के बहुत–से स्रोत थे, इसलिए जीविकोपार्जन के लिए नौकरी करने की आवश्यकता नहीं हुई।

उस समय भारत पराधीन था। दासता की बेड़ियाँ टूटने के लिए तड़प रही थीं। आन्दोलन हो रहे थे। भाईजान ने तल्वार के बजाय क़लम का सहारा लिया और अपनी रचनाओं द्वारा देश को आज़ाद कराने का प्रयत्न करने लगे। देश आज़ाद तो हो गया, परन्तु दो टुकड़ों में बँट गया। भाईजान ने विभाजन का विरोध किया, किन्तु इनका पूरा परिवार पाकिस्तान चला गया और ये अकेले यहाँ रह गये। इनका घर कस्टूडियन ने दो सौ पचास रुपये में नीलाम कर दिया, जिसको मुहम्मद मुईन ने ख़रीद लिया। वर्तमान समय में उसके आधे हिस्से पर गुड्डू सेठ का मकान बना है, बाक़ी आधा हिस्सा मैदान की शक्ल में शेष बचा है। भाईजान भारत में बेघर होकर रह गये मगर पाकिस्तान नहीं गये। आपा और हमारे दोनों भाइयों को लेकर छतरपुर चले गये। छतरपुर में भाईजान के जीवन का दूसरा और संघर्षमय चरण आरम्भ हुआ। जीविकोपार्जन का साधन कोई भी न था और न तो आवश्यकता की वस्तुएँ ही साथ में थीं। छतरपुर से ज़िला मुख्यालय तक आने–जाने के लिए यातायात के साधन वर्षा–ऋतु में बन्द हो जाया करते थे। चमड़ौरा नदी पर पक्का पुल नहीं बना था। रचनाओं के प्रकाशित होने पर जो धन मिलता उससे ऊपरी ख़र्च चलाते। छतरपुर से अन्तू स्टेशन तक आने और जाने का सफ़र सात किलोमीटर पैदल ही तय करते थे। उनकी रचनाओं का संग्रह 'लकीरें' उसी दौर में छपा था। प्रशंसकों की संख्या बढ़ने लगी और साथ ही समस्याओं और आर्थिक संकट के दिनों ने भी घेर लिया था। प्रतापगढ़ रेलवे स्टेशन पर *ए. एच. व्हीलर कम्पनी* की बुक–स्टाल पर नौकरी मिल गयी। कमीशन के पैसे पाते ही उन्होंने बेगमवार्ड मुहल्ला प्रतापगढ़ में ही हन्फ़ी साहब के मकान की ऊपरी मंज़िल को किराये पर लेकर हम लोगों को भी गाँव से यहीं लाकर रहने लगे।

अब भाईजान काफ़ी हद तक स्वावलम्बी हो चुके थे। ये उनके जीवन का तीसरा और अन्तिम चरण शुरू हुआ था। ख़र्च अधिक था और आमदनी कम थी। सुनियोजित ढंग से बजट बनाकर परिवार का पालन–पोषण करने लगे और सबको शिक्षित करने का कार्य करने लगे। सुब्ह छः बजे से रात आठ बजे तक ड्यूटी थी। किसी दिन की छुट्टी न थी। शाही घराने का सदस्य प्लेटफार्म पर किताब की दुकान पर नौकर बनकर खड़ा हो गया था। बहुत से लोग दु:ख से विह्वल हो उठे। प्रकृति और परिस्थितियों के इस क्रूर मज़ाक़ पर भाईजान विचलित नहीं हुए और निरन्तर आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील रहने लगे। हम लोगों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। प्लेटफार्म पर इंजन के दहकते कोयलों की आँच में उनका कोमल शरीर झुलस जाता, पटरियों की गड़गड़ाहट और शोर भरे वातावरण में उनको बहुत कष्ट होता, मगर जीविकोपार्जन का कोई अन्य साधन न होने के कारण वो इस कठिन कार्य को पूरे जीवन निभाते रहे। भाईजान की अधिकांश रचनाएँ इसी वातावरण में लिखी गयीं। सारा दिन खड़े रहते। लखनऊ की ओर जानेवाली पंजाब मेल के जाने पर भाईजान दुकान बन्द करके पैदल घर आते और लखनऊ की ओर से आनेवाली पंजाब मेल के आने से पहले दुकान पर वापस आ जाते। इतने समय में वो घर का हालचाल ले लेते और खाना खाते। आराम करने का समय न पाते। हम दो बहनों और सात भाइयों को पढ़ाने का कार्य और पालन–पोषण की ज़िम्मेदारी की चिन्ता उन्हें हर समय परेशान किये रहती थी।

सन् **1968** में भाईजान का मानसिक सन्तुलन कुछ बिगड़ गया। उनकी स्मरण–शक्ति क्षीण हो गयी और वो अपने–आपको भूल जाते। लोग उनको ठीक होने का आशीर्वाद देते। सौभाग्यवश किसी की दुआ असर कर गयी। घर में भाईजान का आदर–सम्मान अधिक होता था। दुकान पर हमारे भाई लोग जाते और भाईजान का हाथ बँटाते। चाय के बहुत शौक़ीन थे। उनकी ग़रीबी के दर्द का अनुभव हम सब करते। जब वे मुशायरे के लिए बाहर जाते तो दुकान पर भाई रहते थे। चाहे दिल्ली क्लाथ मिल्स का मुशायरा हो, लाल क़िले, पठान कोट, अलीगढ़ यूनिवर्सिटी, आज़ाद मैदान(बम्बई), अदबी ट्रस्ट (हैद्राबाद), कल्चरल अकादमी(जम्मू), कलकत्ता का मुशायरा हो, चाहे मद्रास का मुशायरा

हो, सारे हिन्दुस्तान के मुशायरों में उनकी उपस्थिति मुशायरे की सफलता मानी जाती थी। जनता से लेकर देश के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री तक उनकी कविताओं के प्रशंसक थे। भाईजान स्वाभिमानी थे। मंत्र-मुग्ध होकर श्रोता उनकी नज़्मों को सुनते। ठहर-ठहर कर कलाम पढ़ते। कुर्ता, पाजामा, शेरवानी, पैर में मोज़ा कानों में मफ़्लर, इस लिबास में प्रभावशाली ढंग से माइक के सामने मुशायरे के स्टेज पर खड़े होते। उठने-बैठने का अंदाज़ अमीराना था। उनके जीवन में ही कई किताबें प्रकाशित हो गयी थीं। उर्दू और अँग्रेज़ी भाषा का बहुत अच्छा ज्ञान था। हर समय ज्ञानार्जन में लगे रहते और समय का सदुपयोग करते। किसी बात पर गर्व न करते। फलों में आम, अमरूद और ख़रबूज़ा पसन्द था। आशावादी मनुष्य थे। भाईजान गर्मी में धूप से बचने के लिए सर पर तौलिया रखते और काला चश्मा आँखों पर लगाते। उन्हें जीवनपर्यन्त क़दम-क़दम पर संघर्ष करना पड़ा फिर भी वे नर्म स्वभाव के थे। ग़रीबों पर दया करते थे। बालिका-शिक्षा के प्रेमी थे। दहेज़-प्रथा के विरोधी थे। लड़का-लड़की में भेदभाव न करते, बल्कि हमारी छोटी बहन अतिया को सबसे अधिक चाहते और प्यार से मुन्नी कहा करते थे। हर समय हम लोगों की चिन्ता में चिन्तित रहा करते थे। शायद अधिक चिन्ता के कारण ही अल्सर के रोगी हो गये और मार्च सन् **1984** के आख़िरी सप्ताह में लखनऊ के बलरामपुर अस्पताल में दाख़िल हुए। **4** अप्रैल **1984** को उनके पेट का आप्रेशन किया गया। सब ठीक-ठाक था। **10** अप्रैल को अस्पताल से डिस्चार्ज होनेवाले थे। हम सब भाईजान के आप्रेशन की सफलता पर प्रसन्न थे। **9** अप्रैल की शाम डॉक्टरों ने उन्हें स्वस्थ बताया। रात में डॉक्टरों की टीम जाँच करने आयी और ख़ून चढ़ाने की बात की। नर्सों ने रात दस बजे ख़ून की बोतल की नली भाईजान के शरीर में लगा दी। ब्लड चढ़ने लगा। अचानक उनका पेशाब बन्द हो गया। आपा घबरा गयीं। भाईजान को छोड़कर कभी डॉक्टर की तलाश में बाहर निकल जातीं, कभी उनके पास पलँग पर बैठकर उनको तसल्ली देतीं। इस तरह भोर के चार बज गये। चिड़ियाँ चहचहाने लगीं। आपा को इत्मिनान हुआ कि सुबह हो रही है, अब इनका कष्ट दूर हो जायेगा, मगर मौत उनकी ताक में खड़ी थी। चार बजकर कुछ मिनट पर अचानक भाईजान की साँस तेज़ चलने लगी और देखते-ही-देखते वो ख़ामोश हो गये। उनका शरीर काला पड़ने लगा। जगह-जगह शरीर पर काले धब्बे पड़ने लगे। आपा जान पर क़हर टूट पड़ा। भाईजान

अपने अब्बा जान की तरह अचानक मौत की आग़ोश में जा चुके थे।

उनके एक शेर में (सन् 1962) वसीयत थी कि उनको सिटी में दफ़्न किया जाये। आपा ने दिल पर पत्थर रखा। बस द्वारा हम सबको साथ लेकर भाईजान के पार्थिव शरीर के साथ प्रातः आठ बजे लखनऊ से सिटी के लिए चल पड़ीं। सुबह सात बजे उनके दुनिया से चले जाने की ख़बर रेडियो से प्रसारित हो गयी। उनके दीदार को लखनऊ उमड़ पड़ा। जन–सैलाब से रास्ता भर चुका था। गाड़ी आगे नहीं बढ़ने पा रही थी। एक बजे दिन में भाईजान का बेजान शरीर सिटी पहुँच गया। क़स्बा और शह्र के लोग उनके दीदार की प्रतीक्षा में सुबह से मौजूद थे। नहलाकर कफ़न दिया गया और नमाज़े–जनाज़ा के बाद उनको आबाई कब्रिस्तान में उनके बाप के पहलू में सुपुर्दे–ख़ाक कर दिया गया। शाही हवेली में रहने को तो उम्र भर तड़पते रहे मगर उसी हवेली के सामने बने कब्रिस्तान में दो गज़ ज़मीन पाकर उनकी आत्मा को मानो सुकून मिल गया। उनकी आयु साठ वर्ष भी पूरी न हुई थी।

आपा और हम सब भाई–बहन रात ग्यारह बजे अपने शह्र प्रतापगढ़ लौट आये और भाईजान के अधूरे कार्यों को पूरा करने का संकल्प लिया। भाईजान अबदी नींद सो गये और हम सब की नींद उड़ गयी। हम सभी को भाईजान ने कठिन परिश्रम से शिक्षित किया और जब सब बड़े हुए, वृक्ष फल देने लगे तो उसका स्वाद चखने के लिए भाईजान जीवित न थे। साहित्यिक क्षेत्र में, मुशायरों में, सम्मानित व्यक्तियों के समूह में, शह्र में हर जगह उनकी कमी महसूस होती है। उनकी कब्र पर श्रद्धांजलि देनेवाले लोग आज भी जाया करते हैं।

मैमूना बेगम

नाते-पाक

रचनावर्ष सन् 1972 ईस्वी

हुज़ूर आपका दर्जा बुलन्द, नाम बुलन्द।*
ज़मीं पे बादे-ख़ुदा आपका का मक़ाम बुलन्द।

एक-एक अमल है नमूना, एक-एक काम बुलन्द।
जहाँ को आपका बख़्शा हुआ निज़ाम बुलन्द।

हुज़ूर आपकी चश्मे-करम उठी जिस पर,*
मिला है दोनों जहाँ में उसे मक़ाम बुलन्द।

अदब से सर को झुकाया फ़लकनशीनों ने,
हुआ ज़मीन पे जब आपका कलाम बुलन्द।

हुज़ूर आपकी बख़्शिश है आपका सदक़ा,*
ग़ुलाम आपके करते हैं जो भी काम बुलन्द।

हुज़ूर आपने बख़्शा जो ज़िन्दगी के लिए,*
हरेक दौर में ठहरेगा वो निज़ाम बुलन्द।

कहाँ मजाल कि 'नाज़िश' कहे कुछ इसके सिवा,
हुज़ूर आप बुलन्द, आपके ग़ुलाम बुलन्द।*

** सल्लैअल्लाह व अलैह वसल्लम*

हर्फ़े-आग़ाज़[१]

बेशुमार अश्कों ने सेराब[२] किया है जिसको,
सह्ने-गुलशन[३] में वही जोशे-नुमू[४] फैला है।
रज़्मगाहे-हक़्क़ो-बातिल[५] के कड़े सीने पर,
सदहा[६] गुमनाम शहीदों का लहू फैला है।

यही गुमनाम जियाले[७] हैं जो आगे बढ़कर,
हर नयी सुब्ह को तन्वीर[८] किया करते हैं।
ये हर इक दौर में बर्बाद हुए हैं लेकिन,
यही हर दौर की तामीर[९] किया करते हैं।

यही गुमनाम से इंसाँ, यही अन्जाने लोग,
तेज़ तूफ़ानों के सर बढ़ के कुचल देते हैं।
ये जो तारीख़[१०] के सफ़्हों[११] पे नहीं होते मगर,
यही तारीख़ का उन्वान[१२] बदल देते हैं।

१.प्राक्कथन, २.सींचना, ३.गुलशन का आँगन, ४.विकास का जोश, ५.सत्य-असत्य की रणभूमि, ६.हज़ारों, ७.बहादुर, ८.प्रकाशित, रौशन, ९.निर्माण, १०.इतिहास, ११.पृष्ठों, १२.शीर्षक,

मैं क्यूँ सोचूँ

रचनावर्ष सन् 1965 ईस्वी

मैं क्यूँ सोचूँ कि मिट जायेंगी मेरी नज़्में,
जिनमें इख़्लास[१] भी है और सदाक़त[२] भी है।
जिनमें शामिल है ग़मे-दिल भी ग़मे-दौराँ[३] भी,
जिनके दामन में ग़मे-दह्र[४] की वुस्अत[५] भी है।
जिनमें बिखरी हैं मेरे दौर की तस्वीरें भी,
जिनमें माहौल की तल्ख़ी भी, हरारत भी है।
सुब्हे-मुस्तक़्बिले-हस्ती[६] का यक़ीं भी जिनमें,
और माज़ी[७] की रिवायात[८] की दौलत भी है।
ज़िन्दगानी के तक़ाज़े भी हैं, अंदाज़े भी,
ज़ीस्त[९] का अज़्म[१०] भी, इंसान की जुर्अत[११] भी है।
अपने ही देश से उल्फ़त[१२] के अलावा जिनमें,
अपनी धरती के हर इंसाँ से मुहब्बत भी है।
मैं ये क्यूँ सोचूँ कि मिट जायेंगी मेरी नज़्में,
जिनमें अफ़्कार[१३] की नुद्रत[१४] भी, हक़ीक़त भी है।

इर्तिक़ा[१५] रोज़े-अज़ल[१६] ही से है सरगर्मे-अमल[१७],
हर नये दौर में इक़्दार[१८] बदल जाते हैं।
मर्कज़े-फ़िक्रो-नज़र[१९] होता है ज्यों ही तब्दील,
इल्मो-फ़न के सभी मेयार[२०] बदल जाते हैं।

१.निश्छलता, २.सत्यता, ३.सांसारिक दुख, जीवन-कष्ट, ४.युग-पीड़ा या युगों की पीड़ा, ५.विस्तार, ६.दुनिया का बेहतर भविष्य, ७.अतीत, ८.परम्पराएँ, ९.ज़िन्दगी, १०.संकल्प, ११.साहस, १२.प्रेम, १३.सोच, फ़िक्र का बहुवचन, १४.नवीनता, १५.ऊपर चढ़ना, क्रमिक विकास, १६.आदिकाल, वो दिन जब सृष्टि की रचना हुई, १७.किसी काम में पूरी तन्मयता से लगा हुआ, कर्मशील, १८.गुण की परख, 'क़द्र' का बहुवचन, १९.चिन्तन एवं दृष्टिकोण का केन्द्र, २०.मानदण्ड, स्तर,

इक नये मोड़ पे आ पहुँची है तह्ज़ीबे-वतन,
जो भी साथ इसका न देगा वो उजड़ जायेगा।
जो भी इस मोड़ पे झिझकेगा ज़रा देर को भी,
क़ाफ़िलेवालों से वो शख़्स बिछड़ जायेगा।
ज़ीस्त[१] के वास्ते है हरकतो-तग़य्युर[२] ज़ुरूर,
बहता पानी कहीं ठहरेगा तो सड़ जायेगा।

वो अदब हो, कि ज़बाँ हो, कि हो तह्ज़ीब कोई,
दौर बदला है तो हर शै को बदलना होगा।
जिस किसी को भी यहाँ रहना है ज़िन्दों की तरह,
इस नये दौर के हमराह उसे चलना होगा।
बदलेंगे उर्दू ज़बाँ के भी ख़दो-ख़ाल[३] मगर,
तीरगी[४] कुल्लिएतन[५] इसपे नहीं छा सकती।
उभरेंगे इसमें नये रुख़, नये गोशे[६], लेकिन,
ये अवामी[७] है, इसे मौत नहीं आ सकती।

यही क़िस्मत है कि इस कारगहे-हस्ती[८] में,
दूर होता है जो सच्चाई से, मर जाता है।
तोड़ लेता जो इस धरती से रिश्ता उसको,
रौंदकर क़ाफ़िलए-वक़्त गुज़र जाता है।
और मेरी फ़िक्रे-सुख़न[९] और मेरी पर्वाज़े-ख़याल[१०],
कभी धरती के हक़ायक़[११] से गुरेज़ाँ[१२] न हुई।
मेरे अफ़्कार ने ख़्वाबों का सहारा न लिया,
मेरी तख़्ईल[१३] ख़लाओं[१४] में परअफ़्शाँ[१५] न हुई।

बेशुमार अश्कों ने, आहों ने पुकारा है मुझे,
जब कहीं मैंने दरे-फ़िक्रो-नज़र खोला है।
कई बेनाम से सन्नाटों ने उलझाया मुझे,
जब कहीं जाके कोई हर्फ़े-तपाँ[१६] बोला है।

१.ज़िन्दगी, २.परिवर्तनशीलता, गतिशीलता, ३.रूप-स्वरूप, ४.अँधेरा, ५.समस्त, पूरी तरह, ६.दृष्टि, दृष्टिकोण, ७.जनता की, ८.कर्मलोक, कर्मशील दुनिया, ९.साहित्य-चिन्तन, १०.वैचारिक उड़ान, ११.'हक़ीक़त' का बहुवचन, १२.भागता हुआ, पलायनवादी, १३.कल्पना-शक्ति, १४.एकान्त, १५.सांसारिक सुखों का त्यागी, १६.तप्त-शब्द,

मैंने हर सोज़े-तमन्ना को लगाया दिल से,
हर दुआ की ख़लिशे-बेअसरी[१] समझी है।
मुझको महसूस हुई कितने ही सीनों की जलन,
कितनी आँखों की परेशाँनज़री समझी है।
कैसे आ जाता है दिल आँखों में आँसू बनकर,
कैसे बनती है शराबे-अंबी[२] देखी है।
जिनके होठों पे है ख़ुर्शीदो-सहर[३] की बातें,
उनके ज़ेहनों में अजब तीराशबी[४] देखी है।

किसी बेबस, किसी बेकस, किसी मज्बूर की आस,
थरथराई है तो इक नज़्म लिखी है मैंने।
किसी अरमाँ किसी हस्रत, किसी तक़्दीर की आँख,
डबडबाई है तो इक नज़्म लिखी है मैंने।
शम्ए-आज़ादिए-इंसाँ जो किसी झोंके से,
झिलमिलाई है तो इक नज़्म लिखी है मैंने।
आतिशे-गुल[५] से सही फिर भी मेरे गुलशन तक,
आँच आयी है तो इक नज़्म लिखी है मैंने।

कभी दहके हुए चेहरों के लिए मरता रहा,
कभी बिखरे हुऐ गेसू से मुहब्बत की है।
मैं सदा ज़ीस्त के हंगामों से नज़्दीक रहा,
मैंने इस धरती की ख़ुश्बू से मुहब्बत की है।

लफ़्ज़ो-माने[६] के समझने में तकल्लुफ़ ही सही,
दिल मगर ज़ीस्त के अरमान समझ लेता है।
ज़िक्र अपना हो तो हर ज़र्रे को मिल जाते हैं कान,
बात अपनी हो तो इंसान समझ लेता है।

ये मेरे गीत हैं, ये नज़्में हैं, ये ग़ज़लें हैं,
ग़मे-दौराँ ने ग़मे-दह्र ने पाला है इन्हें।

१.निष्फलता से उत्पन्न पीड़ा, उलझन, २.अंगूर से बनी शराब, ३.सूरज और सुबह,
४.अंधकारमय रात, ५.फूल की तपिश, ६.शब्द और अर्थ,

मेरे माहौल में बिखरी हुई हर तल्ख़ी ने,
मेरे एहसास के सीने से निकाला है इन्हें।
इनके हर रुख़ पे मेरे अहद[१] की परछाईं है,
इसी धरती के हक़ायक़ पे सँभाला है इन्हें।
ये तो बेसाख़्ता[२] चीख़ें है दिले-सोज़ाँ[३] की,
मैंने कब साग़रे-अल्फ़ाज़[४] में ढाला है इन्हें।

मैं ये क्यूँ सोचूँ कि मिट जायेंगी मेरी नज़्में।
मैंने हर नज़्म की तख़्लीक़[५] में मेह्नत की है।
मैं ये क्यूँ सोचूँ कि तारीक[६] है सुब्हे-फ़र्दा[७]।
मैंने इंसान को सूरज की बशारत[८] दी है।

१.युग, २.अचानक, बिना सोचे-समझे, ३.दग्ध हृदय, ४.शब्द-रूपी जाम, ५.सृजन, ६.अँधेरा तम, ७.आनेवाले कल की सुब्ह, ८.शुभ-सूचना, ख़ुशख़बरी,

आख़िरी बात

रचनावर्ष सन् 1969 ईस्वी

मेरा यक़ीन, मेरा अज़्म[१], मेरी बेबाकी।
मेरा ज़मीर अमानत है सुब्हे-फ़र्दा[२] की।
तमाम शौक़ो-तमन्ना, तमाम हस्रते-दिल।
तमाम ख़्वाब हैं मेरे बनामे-मुस्तक़्बिल[३]।
तमाम ख़ाकों में रंग और नूर भर देना,
मेरे ख़ुलूसे-सुख़न[४] को बचा के रखना मगर।
मेरी हयात को हर्गिज़ न रहगुज़र देना।
मेरे क़लम को मेरे साथ दफ़्न कर देना।
कि ये अज़ाब[५] नयी नस्ल तक पहुँच न सके।

मेरे क़लम का बदन सद[६] हज़ार ज़ख़्मों से चूर।
मेरे क़लम के जिगर में हैं अनगिनत नासूर।
सुलगते सीनओ-दिल का धुआँ उगलता रहा।
नफ़स-नफ़स[७] में हज़ारों फ़ुग़ाँ[८] उगलता रहा।
ख़ुद अपने सोज़[९] से गलता रहा, पिघलता रहा।
ख़ुद अपनी आग में ईंधन की तरह जलता रहा।
मुनाफ़रत[१०] का सियह देव[११] इसे कुचलता रहा।
सुकूने-दिल के लिए, इश्रते-नज़र[१२] के लिए,
तमाम उम्र तड़पता रहा, मचलता रहा।
कोई किरन कोई नग़्मा, कोई कँवल[१३] न मिला।
मेरे क़लम को कभी मौक़ए-ग़ज़ल न मिला।

१.संकल्प, निश्चय, २.आनेवाले कल की सुब्ह, ३.भविष्य के नाम, ४.साहित्यिक सच्चाई, साहित्यिक निष्कपटता, ५.पीड़ा, कष्ट, ६.शत, ७.साँस-साँस, ८.आर्त्तनाद, ९.गर्मी, तपन १०.घृणा, नफ़्रत, ११.काला दानव, १२.नज़र की ख़ुशी, १३.कमल,

बयाने ज़ुल्मो-सितम इब्तिदा[१] से अब तक है।
मेरे क़लम की सवानेह[२] बड़ी भयानक है।
कभी मिटा है ये फूलों के रंगो-बू की तरह।
कभी बहा है किसी शह्र में लहू की तरह।
कभी गिरा है ये गलियों में ख़ूने-ग़ाज़ा[३] लिये।
कभी उठा है ये सिन्दूर का जनाज़ा लिये।
कभी फिरा है ये सड़कों पे सर झुकाये हुए।
बरहना[४] माँओं से, बहनों से मुँह छुपाये हुए।
कभी बिका है ये बाज़ार में हुनर की तरह।
कभी तबाह हुआ अज़्मते-बशर[५] की तरह।
कभी गुनाह बना दौलते-नज़र की तरह।
जला किया है कभी अनगिनत घरों की तरह।
कटा किया है फ़सादों में ये सरों की तरह।
है चाक-चाक[६] बहुत ज़ेबो-आस्तीं[७] की तरह।
मेरा क़लम भी बँटा है मेरी ज़मीं की तरह।
इसे मुअर्रिख़े-फ़र्दा[८] को किस तरह सौंपूँ।
मैं इस क़लम के मुक़द्दर पे ख़ुद पशेमाँ[९] हूँ।

तवील[१०] सिल्सिलए-दर्दो-ग़म में लिपटा हुआ,
मेरा क़लम, मेरे दौरे-हयात[११] की तस्वीर।
यही क़लम है मेरे पूरे अहद[१२] की तक़्दीर।
हमें ये ज़ह्र मिला है समुद्र-मन्थन से।
ज़बान ऐंठे, गला जले तो जले।
ये ज़ह्र शिव की तरह क्यों न ख़ुद ही पी डालूँ।
ये काम आज का है, कल पे किसलिए टालूँ।
कि आनेवाला बशर[१३] शर्मसार हो न सके।
मैं चाहता हूँ मेरे बाद जो क़लम उट्ठे।

१.प्रारम्भ, २.कथा, ३. ग़ाज़ा सौन्दर्य प्रसाधन से सम्बन्धित मुँह पर लगानेवाले एक पाउडर को कहते हैं, ४.नग्न, ५.मानव की श्रेष्ठता, ६.तार-तार, ७.वस्त्र, वेशभूषा, ८.आनेवाले कल के इतिहासकार, ९.शर्मिन्दा, १०.लम्बी, विस्तृत, ११.समकालीन जीवन, १२.युग, १३.आदमी,

चमन की बात करे, गुल की दास्ताँ लिक्खे।
फ़सानए-शबे-महताबो-महवशाँ[१] लिक्खे।
बयाने-शौक़[२] करे, वस्फ़े-दिलबराँ[३] लिक्खे।
हदीसे-हुस्न[४] बहर्फ़े-दिले-जवाँ[५] लिक्खे।
न ये कि मेरी तरह मेरे बाद भी शाइर,
तमाम उम्र हिकायाते-ख़ूँचकाँ[६] लिक्खे।
तमाम दर्दो-अज़ीयत[७] की दास्ताँ लिक्खे।
मैं इसलिए बसद इस्रार[८] तुमसे कहता हूँ,
मेरी हयात को हर्गिज़ न रहगुज़र देना।
तवील सिल्सिलए-दर्दो-ग़म में लिपटे हुए,
मेरे क़लम को मेरे साथ दफ़्न कर देना।
कि ये अज़ाब नयी नस्ल तक पहुँच न सके,
ये नस्ल जिसको नयी दास्तान लिखनी है।
किताबे-अज़्मते-हिन्दोस्तान[९] लिखनी है।

१.रात के चाँद और चाँद जैसे चेहरेवालों की कहानी, २.अभिलाषा और उत्कण्ठा का बयान, ३.दिलबरों की तारीफ़, ४.हुस्न की कहानी, ५.जवाँ दिल के शब्दों में, ६.रक्तरंजित कहानियाँ, ७.दर्द और पीड़ा, ८.सैकड़ों आग्रह, ९.हिन्दोस्तान की महानता की किताब,

लफ़्ज़ों का अलमिया[१]

रचनावर्ष सन् 1968 ईस्वी

लफ़्ज़ ही फूल भी है, लफ़्ज़ ही ज़ंजीर भी है।
लफ़्ज़ ही ज़ख़्म भी है, लफ़्ज़ ही शम्शीर[२] भी है।
लफ़्ज़ ही ख़्वाब भी है, ख़्वाब की ताबीर[३] भी है।
और लफ़्ज़ों पे रहा करती है दुनिया की नज़र।
लफ़्ज़ को जाननेवाले ही समझते हैं मगर।

लफ़्ज़ शबनम है, न मोती है, न पत्थर है न आग।
लफ़्ज़ के सीनए-ख़ाली[४] में न आहें हैं, न राग।
लफ़्ज़ के सायए-दामन में न कलियाँ हैं, न नाग।
लफ़्ज़ में नूर समो दें तो सितारा बन जाय।
दिल जो रख दें तो लबे-नाज़[५] का बोसा[६] बन जाय।
और बारूद जो भर दें तो धमाका बन जाय।
हमको अल्फ़ाज़ पे क़ुद्रत[७] तो मिली है लेकिन,
हमने अल्फ़ाज़ की अज़्मत का भरम खोल दिया।
हमने इस जामे-तक़द्दुस[८] में लहू घोल दिया।

भर दिया सीनए-इंसाँ में कुदूरत[९] का ग़ुबार,
बीज नफ़्रत का हर इक ज़ेह्न में बोया हमने।
क़ह्र-ही-क़ह्र निगाहों में समोया हमने।
ज़ह्र-ही-ज़ह्र में लफ़्ज़ों को डुबोया हमने।

१.ट्रेजिडी, २.तलवार, ३.स्वप्नफल, ४.रिक्त हृदय, ५.प्रिय के होंठ, ६.चुम्बन, ७.सामर्थ्य, अधिकार, ८.पवित्रता का जाम, ९.मलिनता,

लब को आज़ुर्दगिए-दिल[१] की कहानी दी है।
लफ़्ज़ को ख़ंजरे-क़ातिल की रवानी दी है।
क़लम को नुत्क़े-शररबार[२] किया है हमने।
मौत-ही-मौत का व्यापार किया है हमने।

आज स्टेज पे, किर्तास[३] पे, काशानों[४] में।
शह्र में, गलियों में, बाज़ार में, दूकानों में।
लफ़्ज़-ही-लफ़्ज़ हैं हर चार तरफ़ बिखरे हुए।
लफ़्ज़ हर रंग के, हर क़िस्म के, हर सूरत के।
सीनए-ज़ेह्न पे अल्फ़ाज़ का इक मेला है।
भीड़ इतनी है कि एहसास का दम घुटता है।
लेकिन इन लफ़्ज़ों को छू लें तो निगाहें जल जायँ,
शाख़े-गुल उनके क़रीब आये तो ख़ंजर हो जाय।
साया पड़ जाये तो फिर मोम भी पत्थर हो जाय।
इनके पैराहने-रंगीं[५] से शरारे[६] फूटें।
इनके अन्फ़ास[७] से किरदार की नब्ज़ें छूटें।
कितनी तारीकियाँ[८] हैं उनकी झलाझल के तले।
मौत बेदार[९] है इन लफ़्ज़ों के आँचल के तले।

लफ़्ज़ तज़्लील[१०] है, तक़ज़ीब[११] है, अय्यारी[१२] है।
लफ़्ज़ साज़िश है, सितमगारी[१३] है, मक्कारी है।
बर्बरीयत[१४] है, तशद्दुद[१५] है, तबहकारी[१६] है।
फ़िरक़ाबन्दी[१७] है, ज़रअन्दोज़ी है, ग़द्दारी है।
आज का लफ़्ज़ हर इंसाँ पे बहुत भारी है।
लफ़्ज़ को फिर न मुजरिम, न ख़ताकार कहो।
लफ़्ज़ से खेलनेवालों को गुनहगार कहो।

१.हृदय की पीड़ा या दुख, २.अंगारे बरसानेवाली वाक्शक्ति, ३. क़ाग़ज़-पत्र, ४. छोटा सा घर जिसे शीशे की वस्तुओं से सजाया गया हो, ५.रंगीन वस्त्र, ६.अंगारे, ७.साँसें ('नफ़स' का बहुवचन), ८.तम, तिमिर, ९.जाग्रत, सचेत, १०.अपमान, तिरस्कार, ११.किसी की बात को झुठलाना या खण्डन करना, १२.बहुत अधिक चालाक, धूर्त, १३.अत्याचार, तिरस्कार, १४.अन्याय, पशुता, १५.सख़्ती करना, ज़ुल्म करना, १६.तबाह करनेवाला, १७.दलबन्दी, गुटबन्दी (विशेषकर धार्मिक आधारों पर),

साँस लेती हुई बारूद अगर बोलेगी।
लाज़िमन् लफ़्ज़ के साग़र में लहू घोलेगी।
है जो दल्लालों में क़ुव्वत तो बकेंगे अल्फ़ाज़।
बेज़मीरी जो है फ़ित्रत तो लुटेंगे अल्फ़ाज़।
ज़ेबो-दामन[१] की तरह चाक रहेंगे अल्फ़ाज़।
गन्दगी बिखरी है, नापाक रहेंगे अल्फ़ाज़।
पूजा बेकार जो ख़ाली हो शिवाला दिल का।
लफ़्ज़ में नूर समोता है उजाला दिल का।

लफ़्ज़ के सर कोई तोह्मत, कोई इल्ज़ाम न दो,
लफ़्ज़ तो आज भी इन्साँ की तरफ़ तकता है।
लफ़्ज़ काँटा ही नहीं फूल भी बन सकता है।
लफ़्ज़ टपकायेगा अमरित[२], लबे-गौतम तो हिले।
रक्सफ़र्मा[३] हो मगर कोई कन्हैया तो मिले।
मुन्तज़िर[४] है किसी चिश्ती, किसी नानक के लिए।
लफ़्ज़ हो जायेगा ज़िन्दा कोई ईसा तो उठे।
कोई बंसी में समो ले तो ये नग़्मा हो जाय।
लफ़्ज़ को कृष्ण जो मिल जाय तो गीता हो जाय।

लफ़्ज़ कहता है सियाही का जिगर चाक करो।
ज़ेहन को पाक करो, फ़िक्र को बेबाक करो।
लफ़्ज़ की क़ुव्वतो-अज़्मत[५] का अब इद्राक[६] करो।
नुत्क़े-पुरसोज़[७] में शोला-सा लपक जाता है।
बेरिया[८] होंठों पे हर लफ़्ज़ चमक जाता है।
फूल खिल जाते हैं, माहौल महक जाता है।

लफ़्ज़ कहता है, फिर एक बार उजालो मुझको।
मैं हक़ीक़त हूँ, तबाही से बचा लो मुझको।

१.वस्त्र आदि, २.अमृत, ३.नृत्यरत, ४.इन्तिज़ार करनेवाला, ५.सामर्थ्य और श्रेष्ठता, ६.अगोचर वस्तुओं का अनुभव, ज्ञान, बोध, ७.आग उगलनेवाली वाणी, ८.आडम्बरहीन, निश्छल,

मैं सदाक़त[१] हूँ, निगाहों में उठा लो मुझको।
मैं मुहब्बत हूँ, कलेजे से लगा लो मुझको।

उँगलियाँ हों कि ज़बानें हों, तख़य्युल[२] हो कि ज़ेह्न,
लफ़्ज़ हर ख़ालिक़े-अल्फ़ाज़[३] को देता है सदा[४]।
दौरे-हाज़िर की उफ़ूनत[५] से बचानेवाला।
है कोई फिर मुझे पाकीज़ा[६] बनानेवाला?

१.सच्चाई, २. ख़याल, विचार, ३.शब्द-शिल्पी, ४.आवाज़, ५.दुर्गन्ध, बद्बू, ६.पवित्र,

अपनी धरती अपना देश

रचनावर्ष सन् 1957 ईस्वी

सुखनवरो[१]! तुमको अर्ज़े-हिन्दोस्तान[२] आवाज़ दे रहा है।
तुम्हारे सिमटे हुए तख़य्युल[३] को हुक्मे-परवाज़[४] दे रहा है।
तुम्हारे नग़मों के वास्ते आज इक नया साज़ दे रहा है।
तुम्हारी फ़िक्रे-सुख़न[५] की ख़ातिर एक और अंदाज़ दे रहा है।

क़लम सँभालो, तुम्हारी जानिब[६] लगी है आँख अहले-अंजुमन[७] की।
हर एक तश्बीह[८] सजके निकले कि लाज रह जाये फ़िक्रो-फ़न की।

नुक़ूश[९] एलोरा के पत्थरों पे कि चश्मगेती[१०] में ख़्वाब जैसे।
कुतुब की ये लाट, अज़्मे-आदम[११] की सूरते-कामयाब जैसे।
ये ताज इंसाँ की हुस्नकारी उलट रही हो नक़ाब जैसे।
ये जामे मस्जिद* का हुस्ने-सादा दुआ कोई मुस्तजाब[१२] जैसे।

ये अर्ज़े-कश्मीर[१३] एक शायर की मुंतहाए-ख़याल[१४] जैसे।
ये लाल क़िले की सुर्ख़ तामीर जम गया हो गुलाल जैसे।

उड़ी है संगम से जब भी ख़ुश्बू तो आबरूए-ख़ुतन[१५] गयी है।
हँसी है जब रात मालवे की तो रोशनी दिल में छन गयी है।
पठार अर्ज़े-दकन[१६] के हैं या निगाहे-महबूब तन गयी है।
कोई अमावस की रात लहरा के ज़ुल्फ़े-बंगाल बन गयी है।

१.साहित्यकारों को सम्बोधन, २.हिन्दोस्तान की धरती, ३.विचार, ४.उड़ने का हुक्म, ५.साहित्य-चिन्तन, ६.दिशा, की ओर, ७.सभा के लोग, ८.उपमा, ९.चित्र, १०.दृष्टिगोचर जगत्, ११.मानव-जाति की श्रेष्ठता, * *आम तलफ़्फ़ुज़ 'जामे मस्जिद' है। उसी को मल्हूज़ रखकर सुकूते-अैन को जायज़ समझ लिया गया- नाज़िश,* १२.स्वीकृत, मंजूर या कुबूल किया हुआ, १३.कश्मीर की धरती, १४. ख़याल की पराकाष्ठा, १५. 'ख़ुतन' तुर्किस्तान में एक इलाक़ा है जहाँ का मुश्क(कस्तूरी) मश्हूर है, १६.दकन की ज़मीन,

निगारे-दिल्ली[१] की ये सजावट कथाकली का हो रूप जैसे।
ये लखनऊ की हसीन शामें गुलाबी जाड़े की धूप जैसे।

ये धान की बालियाँ कि जिस तरह कोई नाज़ुक-सी आर्ज़ू हो।
झुके हुए ख़ुशहाए-गन्दुम[२] कि जैसे चश्मे-बहानाजू[३] हो।
ये फूले सरसों के खेत, आँगन में जैसे बैठी हुई बहू हो।
ये फैली-बिखरी हुई-सी बेलें कि जैसे आशिक़ की गुफ़्तगू हो।

ये क्यारियाँ हैं कि इक मुसव्विर[४] के शाहकारों का सिल्‌सिला है।
ये कोपलें हैं कि सीनए-आदमी में जीने का हौसला है।

ये रोदे-सरजू[५] है या तक़द्दुस[६] की आँच में रूह गल गयी है।
पवित्र जमुना के रूप में बाँसुरी की इक तान बह रही है।
ये पाक गंगा कि जिससे क़ल्बो-नज़र[७] को आसूदगी[८] मिली है।
हमारी धरती ने हाथ फैला के हमको आशीर्वाद दी है

ये नन्हीं मौजें[९] हैं या किसी महजबीं[१०] के अबरू[११] की जुम्बिशें[१२] हैं।
ये नर्म लहरों का है तरन्नुम कि दिल की मासूम धड़कनें हैं।

यहाँ की सनाइयों[१३] में दस्ते-बशर[१४] की मेह्नत लहक रही है।
बनारसी साड़ियों की तह में हुनर की मस्ती झलक रही है।
चिकन की वो चाँदनी कि तख़्लीक़े-फ़न[१५] से दुनिया चमक रही है।
ये जामदानी[१६] का रूप है या चमन में जूही महक रही है।

ये कामदानी[१७] की बूटियाँ कहकशाँ[१८] से जिनको ख़ेराज़[१९] आये।
ज़री[२०] की ये धूप-छाँव जैसे किसी सुहागन को लाज आये।

१.दिल्ली का रूप-स्वरूप, २.गेहूँ के सुन्दर पौधे, ३.ऐसी निगाहें जो ढूँढ़कर बहाना तलाश करें, ४.चित्रकार, ५.सरयू नदी, ६.पवित्रता, ७.हृदय और नज़र, ८.तृप्ति, संतुष्टि, ९.लहरें, १०.चन्द्रमुखी, ११.भौहें, १२.हिलना-डुलना, १३.अलंकृत वस्तुएँ, १४.आदमी के हाथ, १५.कला-सृजन, १६.कपड़े पर की गयी कढ़ाई, १७.रेशम के कपड़े पर सोने-चाँदी की कढ़ाई, १८.आकाशगंगा, १९.लगान, वो रक़म जो अधीन राज्य बड़े राज्य को देता है, २०.सोने-चाँदी के तार जिन पर सुनहरा मुलम्मा (पालिश) चढ़ा हो,

यहाँ ख़यालों के जल्वागाहों में अमन के दीप जल चुके हैं।
यहाँ निगाहों की बाँसुरी से ख़ुशी के नग़मे उबल चुके हैं।
दयारे-गोकुल में हुस्नो-उल्फ़त[१] के सरमदी[२] गीत पल चुके हैं।
ये वो ज़मीं है जहाँ फ़ज़ा में ग़ज़ल के अश्आर[३] ढल चुके हैं।

लुटे हुए गुलिस्ताँ के गोशों[४] में अब भी कुछ बर्गो-बार[५] होंगे।
यहाँ के बेटों में कितने ही राम और सरवन कुमार होंगे।

मिलेगा बुध के पयामे-हक़[६] में वही सुकूने-हयात[७] अब भी।
गया के ज़र्रे दिखा रहे हैं जहाँ को राहे-नजात[८] अब भी।
अयोध्या की फ़ज़ाओं में वफ़ाए-सीता की बात अब भी।
मुसीबतों के घनेरे जंगल में राम लछमन हैं साथ अब भी।

कुरेदो माज़ी[९] की राख इस में शुऊर[१०] का जामे-जम[११] मिलेगा।
इन्हीं रिवायात[१२] के ख़ज़ाने से हमको ज़ोरे-क़लम[१३] मिलेगा।

वही अदाएँ हैं गोपियों की तो कृष्ण की बाँसुरी वही है।
वफ़ाए-शाहजहाँ ने की थी जो मरमरी शायरी वही है।
हज़ार लुटकर भी अपनी धरती पे जल्वए-ज़िन्दगी वही है।
फटा है पंजाब का कलेजा मगर लबों पर हँसी वही है।

इन्हीं में मौज़ूए-नज़्म[१४] ढूढ़ें, यहीं ये मीनारए-अदब[१५] है।
ज़मीन ही मर्क़ज़े-सुख़न[१६] है, वतन ही गह्वारए-अदब[१७] है।

१.प्रेम और सौन्दर्य, २.अनश्वरता, शाश्वतता, ३.शेर का बहुवचन, ४. कोने, एकान्त, ५.फल और पत्ते, फूल-फल, ६.सत्य का सन्देश, ७.जीवन की शान्ति, ८.मुक्ति-मार्ग, ९.अतीत, १०.बोध, विवेक, ज्ञान, ११.कभी न ख़त्म होनेवाला जाम, १२.परम्पराएँ, १३.लेखनी का बल, १४.गीतों का विषय, १५.साहित्य का स्तम्भ, १६. साहित्य के केन्द्र, १७.साहित्य का हिंडोला,

ऐ मेरे वतन

रचनावर्ष सन् 1960 ईस्वी

सलाम ऐ मेरे हिन्दोस्ताँ ! उरूसे-ज़मीं[१]।
सलाम तुझपे कि तुझको कहें बिहिश्ते-बरीं[२]।
सलाम मेरे वतन! ऐ मेरे दयारे-अर्शे-नशीं[३]।
जहाँ हसीन है लेकिन तेरा जवाब नहीं।
हर एक गोशा तेरा आफ़ियत[४] की मंज़िल है।
ये ख़ाके-पाक[५] है तेरी कि ग़ाज़ए-दिल है।

ये आबशार[६], हसीनों के गेसुओं की तरह।
ये चाके-कोह[७] हैं खिलते हुए लबों की तरह।
ये वादियाँ किसी गुलरू[८] के आरिज़ों[९] की तरह।
वसीअतर[१०] है जो माँओं के आँचलों की तरह।
ये ऊँची-ऊँची चटानों का सिल्सिला लबे-जू[११]।
कि जैसे शिव ने बिखेरे हों दोश[१२] पर गेसू।

ये कोहसार[१३] हैं रिफ़्अतों[१४] के नूरे-नज़र।
जहाँ पहुँच के बुलन्दी हो बन्दगीगुस्तर[१५]।
ये जगमगाती हुई चोटियाँ हैं क़िलए-ज़र[१६]।
सलाम करती है झुककर जिन्हें तुलूए-सहर[१७]।
ग़लत कहा जो किसी ने कहा हिमाला है।
निसार[१८] करने को धरती ने दिल उछाला है।

१.दुल्हन की तरह सजी ज़मीन, २.सबसे ऊँचा स्वर्ग, ३.सबसे ऊँचा स्वर्ग, ४.सुख-चैन, ५.पवित्र मिट्टी, ६.झरना, ७.पहाड़ों की दरारें, ८.फूल जैसे चेहरे, ९.कपोल, गाल, १०.विस्तृत, ११.नदी का मुहाना, १२.काँधा, १३.पर्वत-श्रेणियाँ, उपत्यका, १४.उच्चता, बुलन्दी, १५.बन्दगी फैलानेवाला, १६.सोने का क़िला, १७.सूर्योदय सुबह का उदय, १८.निछावर, कुर्बान,

मेरे अज़ीज़ वतन! तुझसे चश्मे-बद[१] रहे दूर।
तेरे जिवार[२] में हैं सद[३] हज़ार जल्वए-तूर[४]।
कुतुब की लाट है या अज़्मे-मुस्तक़िल का ज़हूर।
ये लाल क़िला है तेरी माँग का सिन्दूर।
ये ताज वाक़ई धरती का ताज हो जैसे।
किसी हसीन कुँवारी की लाज हो जैसे।

ये घण्टियों की टनाटन, पुजारियों के भजन।
कँवल[५] की तरह ये मौजों में झूमते हुऐ तन।
ये जामे-सुर्ख़ में घुलती हुई सी चन्द्र-किरन।
ये सुब्हे-काशी है या साँस ले रहा है चमन।
बहुत सँभल के उठाती है बादे-सुब्ह[६] क़दम।
कि मोड़-मोड़ पे दिल हैं, क़दम-क़दम पे सनम।

ये तेरी साँवली जमुना, निगारे-मस्तख़िराम[७]।
कि जैसे कृष्ण की नज़रों में प्रीत का पैग़ाम।
कुछ इस निखार से आती है इस जिवार में शाम।
कि जैसे ज़ुहद[८] के लब पर रुबाइए-ख़य्याम।
ये रंगो-नूर की बारिश ज़मीने-गोकुल पर।
कि जैसे रक्से-बहाराँ[९] हो तख़्तए-गुल पर।

ये काबए-ग़मे-दिल, हुस्नो-इश्क़ का संगम।
ये इक हसीनए-ख़ुल्दे-नज़र का दामने-नम।
ये नर्म-नर्म-सी ठण्डक, ये सरख़ुशी[१०] कम-कम।
अवध की शाम है या गुल पे क़तरए-शबनम।
ये लालाज़ार[११] कि होली में जिस तरह आँचल।
मेरे वतन! ये तेरा रूप है कि जाने-ग़ज़ल।

१.बुरी नज़र, २.आसपास का ग्रामीण परिक्षेत्र, चारों ओर, ३.शत, ४.सीरिया का एक पहाड़ जिस पर हज़्रत मूसा ने ईश्वर का जल्वा देखा था, ५.कमल, ६.सुब्ह की हवा, ७.मस्ती भरी चाल चलनेवाला, ८.परहेज़गारी, ९.बहारों का नृत्य, १०.हल्का नशा, ११.लाला (पोस्त) के फूलों की खेती,

तेरी शराब मेरी ज़िन्दगी के जाम में है।
तेरी ज़मीन की सोंधी महक शाम में है।
तू ही मकाने-तख़य्युल[१] के सक़्फ़ो-बाम[२] में है।
तेरे ही ज़िक्र की ख़ुश्बू मेरे कलाम में है।
न मेह्रो-मह[३] के लिए है न आसमाँ के लिए।
मेरी जबीं है .फ़.क़त तेरे आस्ताँ[४] के लिए।

सलाम तुझ पे तेरी शम्अ के उजालों पे।
तेरे हसीनों पे, तेरे परी-जमालों[५] पे।
सलाम तेरे जवानों पे, .ख़ुशख़ेसालों[६] पे।
सलाम हो तेरी वादी के नौनिहालों पे।
ज़मीं के चेह्रए-सादा में रंग भरते हैं।
ये लोग वो हैं जो फ़ित्रत[७] से जंग करते हैं।

लहू-पसीने से पैदा किया कहीं गुलज़ार[८]।
कहीं तराश दिया बढ़ के सीनए-कोहसार[९]।
ग़लत नहीं कि तेरे पूत हैं ज़माना-शिकार।
बजा[१०] है उनको कहें हम जो ख़ुल्द[११] के मेमार[१२]।
हर एक सख़्तिए-जादा[१३] को धूल समझा है।
चटान राह में आयी तो फूल समझा है।

हम अपने ज़ख़्मे-जिगर बढ़के ख़ुद ही सीते हैं।
मिले जो ज़ह्र का प्याला तो हँस के पीते हैं।
मिज़ाजे-शीरीं[१४] फर्दा[१५] के हम चहीते हैं।
अज़ीमतर हैं कि फ़र्हादवार[१६] जीते हैं।
घने अँधेरे में हम चाँद-रात लाके रहे।
पहाड़ काट के जूए-हयात लाके रहे।

१.विचारों का मकान, २.छत, अटारी, ३.सूरज-चाँद, ४.चौखट, ५.परी जैसे सुन्दर चेह्रोंवाले, ६.अच्छी आदतों या स्वभाववाले, ७.प्रकृति, नेचर, ८. हरी-भरी जगह, उद्यान, ९.पहाड़ का सीना, १०.उचित, ११.स्वर्ग, १२.बनानेवाले, राजमिस्त्री, १३.दुष्कर मार्ग, १४.मधुर स्वभाववाले, १५.लोग व्यक्ति, १६. फ़र्हाद की तरह

सुन अय वतन! तेरी ख़ातिर लहू उछालेंगे।
तुझे ख़िजाँ[१] के हर एक वार से बचा लेंगे।
बुरी निगाह जो अग़्यार[२] तुझपे डालेंगे।
तेरे सपूत दिलों में तुझे छुपा लेंगे।
दराज़े-उम्र[३] हो मैख़ानए-जमाल[४] तेरा।
ये मेरी नज़्म है नज़रानए-जमाल[५] तेरा।

१.पतझड़, २.प्रतिद्वन्द्वी, ३.लम्बी उम्र, ४.सौन्दर्य का मयख़ाना, ५.सौन्दर्य या सुन्दरता का तोहफ़ा या उपहार,

मेरा हिन्दुस्तान

रचनावर्ष सन् 1963 ईस्वी

ये ज़मीने-हिन्द, ये अम्नो-अहिंसा का दयार[१]।
ज़िन्दगी का नग़माख़्वाँ[२] है, हुस्न का आईनादार[३]।
इसके बेटों में कोई राम और कोई सरवन कुमार।
लच्छमन के रूप में उभरा यहाँ भाई का प्यार।

कृष्ण, गौतम, नानको-चिश्ती की महफ़िल हिन्द है।
आदमी के ग्यान और मुक्ती की मंज़िल हिन्द है।

पाकिए-दामाने-सीता[४] दे गयी वो बर्गो-बार[५]।
आज तक अहदे-वफ़ा[६] है इस ज़मीं पे उस्तुवार[७]।
यूँ हुआ सावित्री का सिद्क़े-उल्फ़त[८] गर्मे-कार[९]।
अपनी बाज़ी जीतकर भी मौत ने पायी है हार।

ख़ाक पर मुमताज़ रख देती है जब अपने क़दम।
पत्थरों के ढेरियों से ताज लेता है जनम।

ये मेरा हिन्दोस्ताँ ये ख़ित्तए-गर्दूं-शिकार।
हर ज़माने में रही है इस गुलिस्ताँ में बहार।
है अशोका और अकबर से कभी इज़्ज़ो-वक़ार[१०]।
और कभी अदले-जहाँगीरी[११] का दौरे-ताबदार[१२]।

१.स्थान, २.गीत गानेवाला, ३.दिखानेवाला या प्रतिबिम्बित करनेवाला, ४.सीता का पवित्र दामन, ५. फल-फूल, ६.वफ़ा का वादा, ७.दृढ़, स्थायी, ८.प्रेम की पवित्रता, ९.फलित, १०. सम्मान और शोभा, ११.जहाँगीर का न्याय, १२. ज़ोर या शक्तिवालों का युग,

है मसावातो-उख़ुव्वत[१] की रिवायत[२] हिन्द में।
ज़िन्दा है कृष्णो-सुदामा की हिकायत[३] हिन्द में।

पद्‌मिनी की पाकदामानी[४] से चेह्‌रा बावक़ार[५]।
अज़्मते-नूरेजहाँ[६] है इसकी ज़ुल्फ़ों का सिँगार।
इफ़्फ़ते-ज़ैबुन्निसा[७] रूहे-तक़द्दुस[८] दरकिनार।
मीराबाई की भजन पर क़ुद्‌सियों[९] का आये प्यार।

चाँदबीबी की अज़ाइम[१०] का ज़माना हिन्द है।
लक्ष्मीबाई की जुर्अत का ख़ज़ाना हिन्द है।

ये मेरा हिन्दोस्ताँ, ये सरज़मीने-बावक़ार।
इसमें माज़ी[११] की हर इक तस्वीर शमए-जल्‌वावार।
अहदे-हाज़िर[१२] इक पयामे-आमदे-फ़स्ले-बहार[१३]।
जो बताता है कि मुस्तक़्बिल[१४] है बेहद शानदार।

वल्‌वले[१५] सीने में, दिल में, अज़्मे-मुस्तहकम[१६] लिये।
क़ाफ़िला फिर है रवाना ज़ीस्त[१७] का परचम लिये।

ताज़ा दम, ताज़ा क़दम, ताज़ा निगाहो-ताज़ाकार।
जादए-हस्ती[१८] पे फिर आगे बढ़े मंज़िल-सवार।
फिर वो मेह्‌नतकश अवाम उट्ठे क़तार अन्दर क़तार।
कर चुके हैं जो कभी गेसूए-माज़ी का सिँगार।

फिर हुए बेदार[१९] मैमाराने-तामीरे-हयात[२०]।
अपने हाथों में सँभाले अपनी तक़्दीरे-हयात।

१.समानता और भाईचारा, २.परम्पराएँ, ३.कहानी, ४.पवित्रता, ५.शोभायमान, ६.नूरजहाँ की महानता, ७. ज़ैबुन्निसा का पातिव्रत्य या सतीत्व, ८.पवित्र आत्मा, ९. फ़रिश्ते, औलिया-ए-अल्लाह, १०.संकल्प, इरादे, ११.अतीत, १२.वर्तमान युग, १३.बसन्त के आगमन की सूचना, १४.भविष्य, १५.उमंग, उत्साह, जोश, १६.मज़बूत इरादे, दृढ़ संकल्प, १७.ज़िन्दगी, १८.सांसारिक रास्तों पर, कर्म के रास्तों पर, १९.जाग्रत, २०.जीवन-निर्माण के सृजनकर्ता,

फिर कमरबस्ता[१] हुए हैं ज़िन्दगी के हुस्नकार[२]।
फिर हुए गर्मे-अमल[३] इस दौरे-नौ[४] के किर्दगार[५]।
फूल के मानिन्द खिलती जा रही है नोके-ख़ार[६]।
ज़ुल्फ़ की सूरत सँवरती जा रही है रहगुज़ार[७]।

फिर फ़रोग़े-आफ़्ताबे[८] ताज़ातर होने लगा।
फिर मेरा हिन्द एशिया का राहबर होने लगा।

१.कमर बाँधे हुए, २.सुन्दर कर्म, सुकर्म, ३.कर्मरत, ४.नवयुग, ५.शक्तिमान, ६.काँटे की नोक, ७.रास्ता, ८.सूरज की रोशनी, सूर्यप्रकाश,

हम भारत देश के वासी हैं

रचनावर्ष सन् 1963 ईस्वी

हम अहिंसा के परस्तार[१] कहे जाते हैं।
प्रीत के, प्रेम के शहकार[२] कहे जाते हैं।
अम्ने-आलम[३] के निगहदार[४] कहे जाते हैं।
ज़ीस्त[५] के क़ाफ़िलासालार[६] कहे जाते हैं।
फ़ित्रतन्[७] शोर से, गुल से हमें बेज़ारी[८] है।
हम तो वो है जिन्हें बंसी की सदा प्यारी है।

ज़ीस्त को फ़र्ज़ का एहसास दिया करते हैं।
बाप के हुक्म पे बनवास लिया करते हैं।
सच को हर दौर में हम ज़िन्दा किया करते हैं।
परहलाद[९] आग में जल-जल के जिया करते हैं।
ग़ल्बए-हक़[१०] है यहाँ फ़ित्रते-इंसानी[११] पे।
राजा मज्बूर है मरघट की निगहबानी पे।

अर्सए-हिन्द[१२] का हर ज़र्रा सदा[१३] देता है।
यहाँ रथ-बान भी आईने-बक़ा[१४] देता है।
आन पर आदमी याँ जान लुटा देता है।
महाभारत का फ़साना ये बता देता है।
तीरगी[१५] नूर की अज़्मत[१६] को नहीं छू सकती।
निगहे-बद[१७] किसी औरत को नहीं छू सकती।

१.उपासक, २.अत्युत्तम उदाहरण, किसी कलाकार की सबसे उत्तम कृति, ३.दुनिया की शान्ति, ४.संरक्षक, ५.स्वाभाविक रूप से, ६.विमुखता, ७.ज़िन्दगी, ८. क़ाफ़िले का सरदार, ९.प्रह्लाद, १०.सत्य का प्रभुत्व, ११.मानव-स्वभाव, १२.भारतभूमि, १३.आवाज़, १४.शाश्वत क़ानून, १५.अँधेरा, १६.श्रेष्ठता, महानता, १७.बुरी नज़र,

ग़र्मे–पैकार[१] हुए हुस्न बढ़ाने के लिए।
अस्लहा हमने लिया हक़ को जिताने के लिए।
जंग अगर की है तो कौरव को मिटाने के लिए।
हम लड़े भी हैं तो सीता को बचाने के लिए।
निकले मैदान में दिलसोज़िओ–रंजूरी[२] से।
हमने तल्वार उठायी बड़ी मज्बूरी से।

मान इस दर्जा किया अपने गुरू का हमने।
दे दिया काट के ख़ुद अपना अँगूठा हमने।
छोटे भाई के लिए राज को छोड़ा हमने।
बड़े भाई के खड़ाऊँ को भी पूजा हमने।
कभी तारीख़[३] के औराक़[४] पे डालें जो नज़र।
अपने क़ुर्बान हुए इस देश के सौतेलों पर।

हममें भाई है भरत कोई तो कोई लछमन।
कोई बेटा जो हुआ राम तो कोई सरवन।
बीवी के रूप में सीता की वफ़ाओं का चलन।
प्यार की आख़िरी हद है दिले–राधा की लगन।
इश्क़े–सादिक़[५] का हम इस तरह पता देते हैं।
चीरकर सीना हनूमान दिखा देते हैं।

हुस्न–ही–हुस्न हर इक पर्दागहे–राज़[६] में है।
प्यार–ही–प्यार हर इक लय, हर इक आवाज़ में है।
नग़्मा–ही–नग़्मा हर इक दिल में हर इक साज़ में है।
रक्स–ही–रक्स[७] यहाँ ज़ीस्त के अन्दाज़ में है।
कभी पर्बत पे, कभी नीलगगन पर नाचे।
मौज में आये तो हम नाग के फन पर नाचे।

१.युद्धरत, २.हमदर्दी और दुख, ३.इतिहास, ४.पृष्ठ, 'वरक़' का बहुवचन, ५.सच्चा प्रेम, ६.रहस्य के पीछे, ७.नृत्य-ही-नृत्य,

हर सवाले-रहे-दुश्वार को हल हमने किया।
ख़ारे-दुनिया[१] को तरो-ताज़ा कँवल[२] हमने किया।
ज़ीस्त[३] नौहा[४] थी इसे हुस्ने-ग़ज़ल हमने किया।
धरती पत्थर थी मगर ताजमहल हमने किया।
कल भी हम लोग उठे प्यार की ख़ुश्बू बनकर।
आज भी रहते हैं हम गाँधिओ-नेहरू बनकर।

१.दुनिया के काँटे, २.कमल, ३.ज़िन्दगी, ४.उर्दू-पद्य की एक क़िस्म जिसमें कर्बला के शहीदों पर शोक प्रकट किया जाता है, मृत व्यक्ति के दुख में रोना,

आज़ादी की तेरहवीं सालगिरह

हर जानिब[१] जगमग-जगमग, हर चेह्रे पे रानाई[२] है।
आज़ादी की सालगिरह पैग़ामे-मसर्रत[३] लाई है।
लेकिन अय भारतमाता! मैं आज के दिन इस सोच में हूँ।
तूने मुझको जनम दिया है मैं तुझको क्या नज्र करूँ।

हाँ मेरे पल्ले में भी कुछ तेज़, नुकीली यादें थीं।
कुछ अमरित[४] में डूबे क़िस्से, कुछ ज़ह्रीली बातें थीं।
कुछ सुन्दर आशाएँ भी थीं सीने के तहख़ाने में।
कुछ ख़ूने-अरमानो-तमन्ना था दिल के पैमाने में।

कुछ गहरी चालों की कसक थी, कुछ अंगारे चिर्कों[५] के।
कुछ ज़ख़्मों के फूल खिले थे, कुछ रिसते नासूर भी थे।
भरा हुआ था काँटों से हर गोशा[६] मेरे दामन का।
ज़ह्र मिला था मुझको भी जीवन के समन्दर-मंथन का।

लेकिन मैंने भूले से वो ज़ह्र हँसी में घोल दिया।
मूरख था, अनमोल रतन कंकर-पत्थर में तोल दिया।
मैंने जो समझा, जो सोचा उसको गीत बना डाला।
पग-पग भटक रही है अब गीतों की वो सुन्दर बाला।

१.दिशा, २.सुन्दरता, ३. ख़ुशी का पैग़ाम, ४.अमृत, ५.मलिनता, ६.कोना,

मैंने ख़ूने-दिल से अपनी नज़्मों को सेराब[1] किया।
फिर बेदर्दी से उन सबको दुनिया भर में बाँट दिया।
अपने आँसू ढाल दिये हैं ग़ज़लों के पैमानों में,
और वो ग़ज़लें जा पहुँची कुछ अपनों, कुछ बेगानों में।

मेरे नासूरों की महक क्या जाने कितनी फैली है।
मेरे दर्द की दौलत जाने कहाँ-कहाँ तक बिखरी है।
क्या जाने किस-किस तक पहुँचे मेरे नग़मे, मेरी लै।
सच ही कहा है मुँह से निकली बात परायी होती है।

अब मैं एक भिखारी ख़ाली हाथ और ख़ाली दामन हूँ।
एक कवी[2], इक लेखक होकर भी मैं कितना निर्धन हूँ।
इस बस्ती में शायद कोई मुझ जैसा लाचार नहीं।
अपने ही ज़ख़्मों के फूलों पर मेरा ही अधिकार नहीं।

अय भारतमाता! मैं इक निर्धन शायर इस सोच में हूँ।
आज़ादी के सालगिरह पर तुझको क्या नज़राना दूँ।
ख़ूने-जिगर,ख़ूने-दिल,ख़ूने-हस्रतो-अरमाँ बाँट चुका।
नज़्म,ग़ज़ल,गीत और तराना अब कुछ भी मेरा न रहा।

अलबत्ता कुछ साँसें हैं जिनको मैं अरपन करता हूँ।
ले-देकर इक जान है जो तेरे क़दमों पर धरता हूँ।
आज के दिन वादा करता हूँ तुझ पर तन-मन वारूँगा।
ख़ुद मिट जाऊँगा मैं लेकिन तेरा रूप निखारूँगा।

अय भारतमाता! तू मेरे जीवन का उद्धार करे।
मुझ निर्धन की छोटी सी ये भेंट अगर स्वीकार करे।

१.सींचना, २.कवि

ईद के दिन

रचनावर्ष सन् 1960 ईस्वी

यूँ तो होठों पे तबस्सुम[१] ही रहा ईद के दिन।
फिर भी ग़म था कि हुआ और सिवा[२] ईद के दिन।
मिलनेवाला बईं अंदाज़[३] मिला ईद के दिन।
रो पड़ी अज़्मते-इख़्लासो-वफ़ा[४] ईद के दिन।
ज़ख़्म का एक चिराग़ और जला ईद के दिन।
बढ़ गया और भी अपनों के सितम का एहसास,
ग़ैर ने 'ईद मुबारक' जो कहा ईद के दिन।
कई तर्कीबों से आहों को गलाया लेकिन,
क़हक़हा एक भी ढाले न ढला ईद के दिन।
इतनी बेचारगिए-ज़ीस्त[५] कहाँ थी पहले,
दर्द उठकर भी तबस्सुम न बना ईद के दिन।
मुझको शिकवा है ख़ुद अपने ही ख़ुलूसे-दिल[६] से,
लोग क्यों करते है ग़ैरों का गिला ईद के दिन।
जिस तसन्नो[७] से मिला करते हैं मेरे अहबाब[८],
वो तसन्नो भी मज़ा दे ही गया ईद के दिन।
उफ़ वो एहसास कि तल्ख़ी है मुक़द्दर जिसका,
हाय वो दिल कि जो दिवाना हुआ ईद के दिन।

क़ैद होकर रही महलों में मसर्रत[९] की घड़ी,
लम्हा ख़ुशियों की दुकानों में बिका ईद के दिन।
जिसको रोज़ों से ग़रज़ है न तरावीह[१०] से काम,
है मुसल्मान वही सबसे बड़ा ईद के दिन।

१.मुस्कान, २.अतिरिक्त, ३.इस अंदाज़ से, ४.सच्चे प्रेम की श्रेष्ठता, ५.ज़िन्दगी की बेचारगी, ६.हृदय की निश्छलता, ७.कृत्रिमता, बनावट, ८.मित्रगण, 'हबीब' का बहुवचन, ९. ख़ुशी, १०.रमज़ान के महीने की नमाज़ जो रात में पढ़ी जाती है,

किससे पूछूँ कि किधर जाये वो मासूमो-यतीम,
ईदगह का जिसे रस्ता न मिला ईद के दिन।
हाय! उस दर्द की गीराई[१] कोई क्या जाने,
जो किसी माँ के कलेजे में उठा ईद के दिन।
तंज़[२] तो था मगर अपने पे कि इस दुनिया पे,
बाप के लब पे तबस्सुम जो रहा ईद के दिन।
अपनी कोताहिए-एहसास पे रोना आया,
कोई मुफ़्लिस जो सरे-राह मिला ईद के दिन।
इक ग़मे-दिल ही का रोना तो नहीं था 'नाज़िश',
ग़मे-दौराँ[३] भी मेरे साथ रहा ईद के दिन।

१.पकड़, २.व्यंग्य, ३.दुनियावी ग़म, सांसारिक कष्ट,

होली

रचनावर्ष सन् 1959 ईस्वी

जो चाक-चाक[१] आस्तीं तो ज़ेब[२] तार-तार है।
वो फाग की बहार भी अजीब फ़ित्नाकार[३] है।
हज़ार फ़ित्नाकार है बहार फिर बहार है।

किया है बर्गो-बार[४] ने वज़ू[५] मये-तहूर[६] से।
नफ़स-नफ़स[७] महक उठा फ़रोग़े-रंगो-नूर[८] से।
हर एक फ़र्द[९] इक चमन है देखिए जो दूर से।

गुलाल पाके गुलरुख़ों[१०] का रंग और खुल गया।
शराबे-अर्ग़वाँ[११] से जिस तरह शगूफ़ा[१२] धुल गया।
निगाह की तराज़ुओं में हुस्न आके तुल गया।

जो लब खुले तो इस तरह कि रस टपक-टपक गया।
क़दम उठे तो यूँ कि जामे-मय छलक-छलक गया।
नज़र की मस्तियों से मयकदा बहक-बहक गया।

सलोने-साँवले रुख़ों पे हैं अजब सबाहतें[१३]।
अबीर की चमक-दमक है या दिलों की आफ़तें।
गुलाल की बहार है कि जाग उठीं क़यामतें।

१.फटा-फटा, २.वस्त्र, ३.चंचल, शोख़, ४.फूल-पत्ती, ५.नमाज़ अदा करने के लिए हाथ-पैर धोकर शुद्ध होना, ६.पवित्र शराब, ७.साँस-साँस, ८.रंग और नूर की शोभा, ९.व्यक्ति, १०.पुष्पमुखी, ११.एक लाल फूल से बननेवाली विशेष प्रकार की शराब, १२.कली, १३.गोरापन,

हदे-निगाहे-शौक़ तक बहार जन्नते-नज़र।
कोई 'ग़मे-दिलो-जिगर' कोई 'मसर्रते-नज़र'[१]।
हर एहतिमामे-ख़ास[२] में है आम दावते-नज़र।

मगर बईं फ़रोग़े-रंगरूए-ज़ीस्त[३] ज़र्द है।
लबों पे नग़मए-निशात है, दिलों में दर्द है।
मताए-सीनए-ख़ुलूस[४] एक आहे-सर्द है।

रिवाज और रस्म पर तमाम कारोबार है।
गुलाल का फ़रेब रंगो-नूर का मदार[५] है।
जो दिल ही ख़ुश न हो सके तो झूठ हर बहार है।

नफ़स में ताज़गी नहीं नज़र में सरख़ुशी[६] नहीं।
जो दिल से दिल मिला सके यहाँ वो आदमी नहीं।
ये फाग की बहार अभी क़रीबे-ज़िन्दगी नहीं।

गुलाल की रिवायतों[७] को ज़िन्दगी में हल करें।
अदावतों[८] के, नफ़्रतों के बाज़ुओं को शल[९] करें।
तमाम फ़ुर्सते-हयात[१०] अर्सए-ग़ज़ल[११] करें।

उठो कि जीत लें हम उठके ज़िन्दगी की जंग को।
बढ़ो कि वुस्अतें[१२] अता[१३] करें बहारे-तंग को।
दिलों में जागुज़ीं[१४] करें फ़रोग़े-नूरो-रंग को।

दिलों की धड़कनों से मुंसलिक ख़ुशी की ज़ात[१५] है।
फ़रेबो-मक्र[१६] से बुलन्द मंज़िले-हयात है।
हयात को जो लालारुख़[१७] बना सकें तो बात है।

१.जिसकी नज़र में ख़ुशी हो, २.विशेष व्यवस्था, ३.जीवन का रंग और नूर, ४.हृदय की निश्छलता रूपी पूँजी, ५.आधार, धुरी, ६.हल्का नशा, ख़ुमार, ७.परम्परा, ८.दुश्मनी, ९.शिथिल, ढीला, १०.जीवन के क्षण, ११. ग़ज़ल-सृजन में समय व्यतीत करना, १२.विस्तार, १३.प्रदान करना, १४.स्थान देना, १५.अस्तित्व, १६.धोखा-छल, १७.एक लाल फूल (अहिपुष्प) जैसा रुख़,

जवाब आँ अज़ीज़म[१]

*(सन् **1964** ईस्वी के शुरू में हिन्दोस्तान के मुतअद्दिद मक़ामात पर होनेवाले फ़िरक़ावाराना फ़सादों के दौरान में पाकिस्तान से आये हुए छोटे भाई के ख़ुतूत का जवाब- नाज़िश प्रतापगढ़ी)*

रचनावर्ष सन् 1964 ईस्वी

मेरे अज़ीज़ तुम्हारे कई ख़ुतूत[२] मिले।
मगर हैं सब के मज़ामीन[३] एक ही जैसे।
लिखा है तुमने मैं बेयारो-बेसहारा हूँ।
तुम्हें ये ग़म है मैं अपने वतन में तन्हा हूँ।
तुम्हें है फ़िक्र यहाँ कौन हो सकेगा मेरा।
ख़ुदा न कर्दा[४] अगर मुझ पे कोई वक़्त पड़ा।
हर एक मोड़ पे ज़ुल्मत यहाँ बरसती है।
लिखा है तुमने कि ये 'ज़ालिमों की बस्ती' है।

तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ मैं तो अच्छा है।
लिखा है तुमने कि 'हिन्दोस्ताँ में ख़तरा है'।

ये और ऐसे ही दो-चार और भी फ़िक़रे[५]।
बड़े ख़ुलूसो-मुहब्बत के साथ तुमने लिखे।
मगर अज़ीज़ बिरादर! तुम्हें ये क्या मालूम।
कि मैं न बेकसो-बेबस हूँ और न हूँ मग़मूम[६]।
ये 'ज़ालिमों का वतन है' लिखा है तुमने मगर।
मुझे तो सिर्फ़ दुआएँ मिली हैं होंठों पर।
यहाँ सभी मेरे दुश्मन हैं मान लूँ कैसे।
कि मुझको जितने मिले दोस्त और भाई मिले।
हर एक होंठ ने जीने ही की दुआ दी है।
हर एक माँ ने मुझे अपनी मामता[६] दी है।

१.अपने अज़ीज़ को लिखा गया जवाब, २.'ख़त' का बहुवचन, २.विषय, ३. ख़ुदा न करे, ४.वाक्य, ५.जिसे ग़म हो, दुखी, ६.ममता,

हर एक शख़्स मुझे अपने साथ रखता है।
हर इक बुज़ुर्ग मेरे सर पे हाथ रखता है।
जो मुझसे छोटे हैं वो एहतराम[१] करते हैं।
मुझे भी अपना समझकर सलाम करते हैं।
दुरुस्त है कि मैं छूटा हूँ कुछ अज़ीज़ों से।
दुरुस्त है कि बिछड़ा हूँ तीन बहनों से।
मगर अज़ीज़ बिरादर! ये वाक़िआ भी सुनो।
हज़ारों बहनों ने बाँधी हैं राखियाँ मुझको।
न जाने कितने मुहिबो[२]-अज़ीज़दार मिले।
मुझे दो-तीन के बदले में बेशुमार मिले।
मैं इस दयार को क्यूँकर[३] कहूँ पराया है।
यहीं की ख़ाक पे मैंने शुऊर पाया है।
रफ़ीक़ो-मूनिसो-ग़मख़्वार[४] हर बशर है मेरा।
मेरे वतन का इक-इक फ़र्द[५] हमसफ़र है मेरा।
अवामो-शेर[६] के माबैन[७] सिलसिला हूँ मैं।
समझ सको तो कहूँ एक क़ाफ़िला हूँ मैं।
ये लोग सुनते हैं, पढ़ते हैं जो मेरी नज़्में।
मुझे यक़ीन है ये सारे लोग मेरे हैं।
यही यक़ीं, यही ईमान साथ रहता है।
मैं बेसहारा हूँ, तन्हा हूँ, कौन कहता है।

ये मेरा मुल्क है, मेरा वतन है, मेरी ज़मीं,
यहाँ सभी मेरे अपने हैं कोई ग़ैर नहीं।

है वाक़िआ कि 'जिगर'* हूँ कोई न 'जोश'* हूँ मैं।
पलेटफ़ार्म[८] पर अदना कुतुबफ़रोश[९] हूँ मैं।
मगर ख़ुलूस भी मुझको मिला मुहब्बत भी।
मुझे नसीब है इज़्ज़त भी और शुह्रत भी।
ख़ुशानसीब, नहीं मुझ-सा दूसरा कोई।
कि मेरे शह्र में है क़द्रो-मंज़िलत[१०] मेरी।

१.सम्मान, २.मित्र, ३.कैसे, ४.दोस्त-सखा-हमदर्द, ५.व्यक्ति, ६.जनता और शेरो-शाइरी, ७.के दरमियान, के बीच, * शाइरों के नाम, ८.प्लेटफ़ार्म(रेलवे का), ९.किताब बेचनेवाला, १०.आदर,

बड़े-बड़ों की तरफ़ से सलाम आते हैं।
क़दम-क़दम पे मेरे दोस्त काम आते हैं।
बिरादाराने-वतन ने मुझे जो क़ुव्वत दी।
मैं सच कहूँ वो अज़ीज़ों के बस की बात न थी।
मेरे अज़ीज़! मेरी फ़िक्र मेरा ग़म न करो।
समझ सको तो इस अनमोल बात को समझो।
जो ख़ौफ़ खाता हो रहकर ख़ुद अपने शह्र में भी।
उस आदमी में यक़ीनन् कोई कमी होगी।
जगह नहीं है ज़माने में उस बशर[१] के लिए।
ख़ुद अपने मुल्क में जो सर उठा के चल न सके।
कोई कमी है, न ग़म है, न कोई ख़तरा है।
मेरे वतन ने मुझे हर तरह नवाज़ा[२] है।
मेरा निशात[३] है मह्फ़ूज़, सरख़ुशी मह्फ़ूज़।
मेरे लबों पे मेरी एक-इक हँसी मह्फ़ूज़।
मजाल किसकी जो छीने कोई ख़ुशी मेरी।
कि इस चमन में मुक़द्दस[४] है ज़िन्दगी मेरी।
मेरे अज़ीज़! बुलाओ न अपने पास मुझे।
दयारे-ग़ैर कब आयेगा इतना रास मुझे।
कोई तलब, न किसी शै की जुस्तजू बाक़ी।
है मेरे दिल में फ़क़त एक आर्ज़ू बाक़ी।

दुआ करो कि जब तक जिऊँ वतन में जिऊँ।
मरूँ तो अपने बुज़ुर्गों की पायती[५] सोऊँ।

लिखा है तुमने, यहाँ मेरे फ़न की क़द्र नहीं।
मेरी ज़बान की, मेरे सुख़न[६] की क़द्र नहीं।
ये एक बात भी लेकिन मुझे बताओ तुम्हीं।
कि अर्ज़े-हिन्द[७] में 'जोशो-जिगर'* रहे कि नहीं।
'फ़िराक़ो-साहिरो-कैफ़ी'* यहीं पले कि नहीं।
फिर उनके बाद नये क़ाफ़िले चले कि नहीं।
यहाँ पे 'जज़्बिओ-अख़्तर'* हैं नग़माख़्वाँ[८] कि नहीं।
हर एक तरह हैं 'सरदार'* कामराँ[९] कि नहीं।

१.व्यक्ति, २.कृपा करना, ३. ख़ुशी, प्रसन्नता, ४.पवित्र, ५.पैताने, ६.साहित्य, ७.भारतभूमि,
*सभी शाइरों के नाम, ८.गीत गानेवाला, ९.कामयाब,

'जमीलो-साग़रो-एजाज़'* हैं यहीं कि नहीं।
यही है 'ताबाँ'*-ओ-'मजरूह'* की ज़मीं कि नही।
'सलामो-जामिओ-मख़्दूम'* रह रहे हैं कहाँ।
'नुशूर'*-ओ-'अख़्तरुलईमान'* भी बसे हैं कहाँ।
यहीं पे इल्मो-अदब के रहे हैं गह्वारे[१]।
यहीं से उभरा किये अज़्मतों[२] के मीनारे।
इसी दयार से शाइस्तगी[३] इबारत[४] है।
यहीं सुख़न की न हो क़द्र! सख़्त हैरत है।
तुम्हारे ज़ेह्न में शायद ये बात तो होगी।
कि फ़ारसी थी कभी तर्जुमाँ[५] हकूमत की।
दयारे-ग़ैर के लोगों को जब मिला क़ब्ज़ा।
तो दौर-दौरा[६] हुआ मुल्क भर में इंग्लिश का।
मगर कबीर का नामो-कलाम बाक़ी रहा।
मिटा न एक भी मिस्रा[७] रहीमो-तुलसी का।
ये इसलिए कि अवामी ज़बान के नग़्मे।
किसी भी जब्रे-हकूमत[८] से मिट नहीं सकते।
हुई है आज जो हिन्दी ज़बाँ हकूमत की।
तो आख़िर इसमें कोई बात क्या है आफ़त की।
कोई सितम तो नहीं, जौरे-दुश्मनाँ[९] तो नहीं।
ज़बान ही तो है, कुछ क़ह्रे-आसमाँ तो नहीं।
कोई भी फ़न हो शुऊरे-बशर[१०] की मेह्नत है।
कोई ज़बाँ हो वो जागीरे-आदमीयत है।
हर इक वो इल्म जो दुनिया में पाया जाता है।
कोई भी और कहीं भी हो, मेरा अपना है।
जो अपनी चीज़ हो इन्साँ को उस से कद[११] कैसी।
ज़बाँ के बाब[१२] में 'मैं' और 'तू' की हद कैसी।
हुदूदे-अक़्लो-ख़िरद[१३] से गुज़र नहीं सकता।
किसी ज़बाँ से भी नफ़्रत मैं कर नहीं सकता।
मेरी ज़मीन ही हिन्दी ज़बाँ की मस्कन है।
जो इस ज़बाँ का है दुश्मन वो मेरा दुश्मन है।

१.हिंडोला, २.महानता, ३.सभ्यता एवं संस्कृति, ४.लिखा जाना, ५.प्रतिनिधि, ६.युग, ७.पंक्ति, ८.तानाशाही, ९.दुश्मनों का अत्याचार, १०.मानव-सभ्यता, ११.वैमनस्य, रंजिश, १२.अध्याय, १३.बुद्धि-विवेक की सीमा,

बसद[१] ख़ुलूस[२] बहुत एहतराम[३] करता हूँ।
मैं अपनी क़ौमी ज़बाँ को सलाम करता हूँ।

मग़र अज़ीज़ मेरे! तुम कहीं न ये समझो।
कि मैं भी भूल चला रफ़्ता-रफ़्ता उर्दू को।
नहीं ये बात नहीं वाक़िआ बस इतना है।
कि मैंने और तरह मस्अले पे सोचा है।
मुझे क़ुबूल है क़ौमी ज़बाँ की अज़्मत भी।
ख़ुद अपने फ़न-ओ-अदब से है मुझको उल्फ़त[४] भी।
ज़बाँ वो शै तो नहीं जिसको ला के रख दे कोई।
ज़बान सदियों में बनती भी है बिगड़ती भी।
ज़बाँ मनाज़िले-तह्ज़ीब[५] की कहानी है।
ज़बाँ तसल्सुले-तारीख़े-ज़िन्दगानी[६] है।
ज़बान सिल्सिलए-इर्तिकाए-पैहम[७] है।
ज़बान आईनए-इत्तिहादे-बाहम[८] है।
ज़बाँ है जज़्बों की संगीत, साज़-शौक़ की लै लै।
ज़बाँ, ख़ुलूस का इज़्हारे-बेतकल्लुफ़ है।
लुग़त[९] हुई है किसी दिल की तर्जुमान[१०] कहीं?
ब हुक्मो-जब्र[११] बनी है कोई ज़बान कहीं?
न दफ़्तरों, न कहीं फ़ाइलों में ढलती है।
ज़बान धरती के सीने से लग के चलती है।
जबाँ उबलती है आँगन से क़हक़हों की तरह।
ज़बान फलती है खेतों में बालियों की तरह।
ज़बान तनती है चौपाल में जवाँ की तरह।
ज़बान बनती है बैठक में दास्ताँ की तरह।
ज़बाँ घरों में बड़ी-बूढ़ियों के होठों पर।
मचलती रहती है सदहा[१२] कहानियाँ बनकर।
ज़बान चलती है कूचों[१३] में, कारख़ानों में।
ज़बान ढलती है बाज़ार में, दुकानों में।

१.सैकड़ों, २.निश्छलता, ३.सम्मान, ४.प्रेम, ५.सभ्यता एवं संस्कृति की मंज़िलें, ६.जीवन के इतिहास का क्रम, ७.उत्तरोत्तर वृद्धि करना, ८.पारस्परिक मेल-मिलाप का आईना, ९.शब्दकोश, १०.प्रतिनिधि, ११.हुक्म और ज़बरदस्ती, १२.हज़ारों, १३.गलियों,

ज़बाँ क़दम ब क़दम सीढ़ियों पे चढ़ती है।
ज़बान प्यार-मुहब्बत से आगे बढ़ती है।
ज़बाँ अवाम की मेह्नत भी है, शुऊर भी है।
ज़बान क़ौम की इज़्ज़त भी है, ग़ुरूर भी है।
उसी ज़बान का शुह्रा रहेगा चार तरफ़।
अवाम बख़्श दें जिसको क़ुबूलियत[१] का शरफ़[२]।
ज़बाँ अवाम से हो दूर तो अभागन है।
सुनो पिया! जिसे चाहे वही सुहागन है।
मेरी ज़बान का गर हौसला सलामत है।
तो फिर न ख़द्शा[३] है कोई, न कोई आफ़त है।
न हौल[४] आता है मुझको न दब के रहता हूँ।
मैं अपनी बात ख़ुद अपनी ज़बाँ में कहता हूँ।
गिरोह[५] और हुकूमत[६] की सिम्त क्यों देखूँ।
कि मैं अवामी अदालत के इख़्तियार[७] में हूँ।
अवाम ही मेरे मुंसिफ़ भी हैं, वकील भी हैं।
सुबूत भी हैं, गवाही भी हैं, दलील भी हैं।
मेरे कलाम में नग़्मा अगर अवामी है।
तो फिर यक़ीन करो उस की लय दवामी[८] है।
नहीं तो कोई बशर ज़अमे-बादशाही[९] से।
इसे बचा न सकेगा कभी तबाही से।

नहीं अज़ीज़! तुम अफ़्राद[१०] को बुरा न कहो।
अवाम रद न करें मुझको ये दुआ माँगो।

तुम्हें ये ज़िद है कि मैं छोड़ दूँ ख़ुद अपना चमन।
तुम इसको कहते हो 'इस्लाम-दुश्मनों का वतन'।
मगर अज़ीज़! तुम्हें वाक़िआ बताता हूँ।
सुनो बग़ौर सुनो, जो तुम्हें सुनाता हूँ।
दयारे-हिन्द में बसे हैं ऐसे राम अब भी।
जो छोड़ सकते हैं गद्दी भरत के नाम अब भी।

१.स्वीकार्यता, २.सम्मान, श्रेष्ठता, ३.शंका या भय, ४.ख़ौफ़, डर, ५.गुटबन्दी, ६.शासन, ७.अधिकार, ८.दृढ़, स्थायी, ९.बादशाहत का ग़ुरूर, १०.लोग,

मगर भरत भी तो हो अपने फ़र्ज़ से हुशियार।
पड़े जो वक़्त तो हो जाय भाइयों पे निसार[१]।
ये इक पुरानी मसल[२] तुमने भी सुनी होगी।
कि एक हाथ से ताली कभी नहीं बजती।
हैं क़द्रदान ख़ुलूसो-वफ़ा के हम सचमुच।
हमें पसन्द नहीं दिल में कुछ, ज़बान पे कुछ।
न मुस्लिमों से, न इस्लाम से अदावत[३] है।
हमें तो सिर्फ वतन-दुश्मनों से नफ़रत है।
मुनाफ़िक़ों[४] के लिए नोके-ख़ार[५] है भारत।
जो दिल हो साफ़ तो फूलों का हार है भारत।

ग़लत है, झूठ है, जो कुछ भी लोग कहते हैं।
मेरे अज़ीज़! यहाँ सिर्फ़ दोस्त रहते हैं।

ये वाक़िआ* है कि कुछ बस्तियों में आग लगी।
हमें है इस पे बहुत रंज भी, नदामत[६] भी।
मगर हर एक जगह शरपसन्द[७] होते हैं।
जो आग उगलते हैं सीनों में ज़हर बोते है।
हमारे देश में भी ऐसे कुछ अनासिर[८] हैं।
जो क़द्रे-ज़ीस्त[९] समझने से अब भी क़ासिर[१०] हैं।
जिन्हें न धर्म से मतलब न दीन[११] से कोई।
जो अपने पेशे-नज़र[१२] रखते हैं ग़रज़ अपनी।
यही वो हैं जो ग़लत काम करते रहते हैं।
जो क़ौमो-मुल्क को बदनाम करते रहते हैं।
यक़ीं करो कि बहुत जल्द इन्हें सँभालेंगे।
हम ऐसे लोगों का एक-एक बल निकालेंगे।

फिर इसके बाद ये जन्नतनिशान[१३] ठहरेगा।
अज़ीमतर[१४] मेरा हिन्दुस्तान ठहरेगा।

१.निछावर, २.कहावत, ३.वैमनस्य, ४.जिसके मुँह पर कुछ हो और दिल में कुछ, [illegible], 5.[illegible], * *सन् 1964 के शुरू में कलकत्ता और उसके आसपास होनेवाले फ़िरक़ावाराना फ़सादात की तरफ़ इशारा है- नाज़िश प्रतापगढ़ी,* ६.लज्जा, शर्मशार होना, ७.उपद्रव करनेवाले, कलहप्रिय, ८.तत्त्व, ९.जीवन-मूल्य, १०.असमर्थ, नाकाम, ११.दीन-धर्म, १२.दृष्टिगत, १३.स्वर्ग जैसा, १४.महानतम, श्रेष्ठतम,

यक़ीन है मुझको

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

लोग कहते है मेरे देश के हर गोशे[१] में,
नफ़रतो-बुग़ज़ो-तअस्सुब[२] की अमलदारी[३] है।
हर तरफ़ मज़हबो-मिल्लत[४] की सितमगारी[५] है।
हर बशर माइले-तख़्रीबो-तबहकारी[६] है।
कोई हिन्दू, कोई सिख है तो मुसल्माँ कोई।
पूरे भारत में नहीं एक भी इंसाँ कोई।
यहाँ मद्रासी है, पंजाबी है, बंगाली है।
भारती जिसमें खड़ें हों वही सफ़[७] ख़ाली है।

लोग कहते हैं मगर लोगों का कहना कैसा।
मैं तो अब तक भी ये तफ़रीक़[८] नहीं कर पाया।
ये ख़दो-ख़ाल[९], ये अंदाज़ हैं किस ख़ित्ते[१०] के।
ये चलन और ये आदाब[११] हैं किस सूबे के।
लम्हा भर को भी मेरे ज़ेह्न में उभरा न ख़याल,
कि ये इक क़तरए-नाचीज़ है या धारा है।
कोई ज़र्रा है कि तारा है कि महपारा[१२] है।
कुफ़्रो-ईमाँ का नहीं मेरे यहाँ कोई सवाल,
मैं हूँ फ़नकार हर इंसान मुझे प्यारा है।

१.कोने, २.घृणा-द्वेष-धार्मिक पक्षपात, ३.शासन, हुकूमत, ४.धर्म-सम्प्रदाय, ५.अत्याचार, ६.विनाशक, ७.पंक्ति, ८. फ़र्क़, ९.रूप-स्वरूप, १०.परिक्षेत्र, ११.तौर-तरीक़ा, १२.चाँद का टुकड़ा,

ये जो बेगाना-सिफ़त[१] दुश्मने-जाँ की सूरत,
देश में बसते हैं इस कोने से उस कोने तक।
और ख़ामोश हैं इक नारए-हू होने तक।
ये जो आप अपने को दीवाना बना लेते हैं।
अपने ही शह्र को पल भर में जला देते हैं।
ये जो तकते हैं मुझे कीना[२] भरी नज़रों से,
जो मेरे जाम को मेरे ही लहू से भर दें।
मुझको पा जायें अकेले में तो टुकड़े कर दें।
मेरी ही माँ ने, बहन ने इन्हें पाला होगा।
मेरी ही बेटी ने परवान चढ़ाया होगा।
हाय किस दिल से मैं इन लोगों से रिश्ता तोड़ूँ।
क्यूँकर इन लोगों से मैं क़तए-तअल्लुक़[३] कर लूँ।
एक ही रिश्तए-ख़ूँ, एक वतन है कि नहीं।
एक ही अहदे-जुनूँ[४], दौरे-महन[५] है कि नहीं।

ये जिन्हें अपनी ही मंज़िल के निशाँ याद नहीं।
ये जो आबाद भी रहते हुए आबाद नहीं।
ये जो दिलशाद[६] हैं इस तरह कि दिलशाद नहीं।
ये जो हँसते हैं तो रोने का गुमाँ होता है।
इनकी हर साँस में आहों का धुआँ होता है।
ये भले-चंगे हैं और फिर भी सनक जाते हैं।
चन्द लम्हों को सरे-राह भटक जाते हैं।
इनकी फ़ित्रत[७] में मुहब्बत है, अदावत तो नहीं।
क़ाबिले-रह्म हैं ये, क़ाबिले-नफ़रत तो नहीं।
क्यूँकर इन लोगों से मैं क़तए-तअल्लुक़ कर लूँ।

ये मेरे देश के बहके हुए, भटके हुए लोग,
ग़ैर इनमें नहीं कोई भी सभी अपने हैं।
ये मेरे भाई-भतीजे हैं, मेरे बच्चे हैं।

१.बेगानों की तरह, २.द्वेष, ३.सम्बन्ध विच्छेद, ४.उन्माद का समय, उन्माद-अवस्था,
५.दुख का समय, तक्लीफ़ का दौर, ६. ख़ुश, प्रसन्नचित, ७. प्रकृति,

मैं इन्हीं का हूँ, समझता हूँ बहरतौर[१] इन्हें।
ये थके-हारे हैं सोने दो अभी और इन्हें।
नींद हो जायेगी पूरी तो ये जाग उट्ठेंगे।

और अब रात के कटने में भी कुछ देर नहीं।
रुख़े-हालात पलटने में भी कुछ देर नहीं।
मैं हूँ इस देश का फ़नकार, यक़ीं है मुझको।
इस यक़ीं ही पे हर इक ज़ह्र पिये जाता हूँ।
इस भरोसे ही पे मर-मर के जिये जाता हूँ।

१.हर तौर से,

अय मेरे दोस्तो!

रचनावर्ष सन् 1964 ईस्वी

कहूँ क्यूँकर[१] कि चन्द अहबाबे-मुख़्लिस[२] खो गये मुझसे।
'जवाब आँ अज़ीज़म' पढ़ के बदज़न[३] हो गये मुझसे।
समझ बैठे कि अब मैं भी ग़लत धारों पे बहता हूँ।
'शबे-तारीकतर'[४] को सुब्हे-रोशन मैं भी कहता हूँ।
गुमाँ है, जानता हूँ बर्बरीयत[५] को रवा[६] मैं भी।
वो कहते हैं कि ज़ालिम का हुआ हूँ हमनवा[७] मैं भी।
वो समझे हैं मक़ामे-सख़्त पर रुकना पड़ा मुझको।
उन्हें ग़म है कि पाए-जब्र[८] पर झुकना पड़ा मुझको।
वो समझे हैं कि अब ऐलाने-हक़ करने से डरता हूँ।
मेरे अहबाब[९] तानाज़न[१०] हैं मैं मरने से डरता हूँ।
शुमार अब हो गया मेरा भी ज़ुल्मत[११] के असीरों[१२] में।
मेरे अहबाब गिनते हैं मुझे भी बेज़मीरों में।

मुझे 'ओहदे' की लालच है, मुझे 'इन्आम' की ख़्वाहिश।
मैं अब हर्गिज़ नहीं वो कल जो था उनके लिए 'नाज़िश'।

मगर अय काश कह दे कोई उन अहबाबे-बदज़न से।
कि वो मुझको, मेरे किरदार[१३] को यकसर[१४] ग़लत समझे।
मेरी बेबाकिओ-जुर्अत वही अब भी है जो कल थी।
मेरी हक़गोई[१५] की आदत वही अब भी है जो कल थी।
ग़लत बातों को 'दूरअन्देश'[१६] इंसाँ रोकता कब है।
कोई ओहदे का जोया[१७] रहबरों को टोकता कब है।

१.कैसे, २.निश्छल मित्रगण, ३.जो किसी के प्रति बुरा विचार रखे, बदगुमान, ४.अँधेरी रात, ५.अत्याचार, अन्याय, ६.उचित, वाजिब, ७.सहमत, एक राय, ८. ज़ुल्म के पाँव, ९.मित्रगण, १०.व्यंग्य करनेवाले, ११.अन्याय, १२.क़ैदी, १३.व्यक्तित्व, १४.नितान्त, १५. सत्यवादिता, १६.दूरदर्शी, १७.ढूँढ़नेवाला, पाने का इच्छुक,

मुझे इन्आम की ख़्वाहिश अगर होती तो क्यूँ लिखता।
बहुत-सी ऐसी नज़्में जिनमें बेहद तल्ख़ है लहजा।
किया करता हूँ चोटें खुल के अरबाबे-क़ियादत[१] पर।
लिखा करता हूँ नज़्में, तंज़[२] हो जिनमें हकूमत पर।
रहा है जंगे-आज़ादी में सफ़बस्ता[३] क़लम मेरा।
मेरी ख़ातिर बहुत आसाँ है 'पेंशनयाफ़्ता'[४] होना।
मगर मैं हर नफ़स हर आन[५] हक़ के साथ रहता हूँ।
समझता हूँ जो कुछ 'सच' उसको बिल एलान[६] कहता हूँ।
न झिझकेगा रहे-दुश्वार में मेरा क़दम यारो!
यक़ीं जानो कि बिक सकता नहीं मेरा क़लम यारो।
मेरी तक़्फ़ीर[७] करनेवाले यकसर[८] हार बैठे थे।
मुझे मुर्तद[९] बतानेवाले भी हो जायेंगे चुपके।

न मैं उस 'वक़्त'* दबता था, न मैं इस वक़्त डरता हूँ।
मैं अपने फ़र्ज़ से वाक़िफ़ हूँ अपना काम करता हूँ।

ख़ुदा का शुक्र है मुझको भी है इस्लाम से उल्फ़त[१०]।
है मेरे दिल की गहराई में भी इस नाम से उल्फ़त।
मुझे क्यूँकर न ग़म होगा मुसल्माँ की तबाही पर।
मैं शायर हूँ जो रोता है हर इंसाँ की तबाही पर।
नहीं भूला हूँ अय यारो! मैं कलकत्ते का क़िस्सा भी।
मेरी नज़रों में है जमशेदपुर और रोडकेला भी।
जहाँ कुछ वहशियों ने अक़्लो-दानिश[११] को भुलाया था।
दरिन्दों ने जहाँ इंसानियत को ख़ूँ रुलाया था।
वो उर्यां-रक़्स[१२] था ग़ारतगरी[१३] का, बर्बरीयत का।
कि जिसकी वज्ह से सर झुक गया है आदमीयत का।

१.रहनुमाई करनेवाले, नेतागीरी, २.व्यंग्य, ३.पंक्तिबद्ध, ४.पेंशन पाना, ५.क्षण, पल, ६.डंके की चोट पर, ७.मुसल्मान पर कुफ़्र का फ़त्वा लगाना, ८.एक सिरे से दूसरे सिरे तक, ९.जो अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में चला जाय, विधर्मी, * *तक़्सीम से पहले मुस्लिम लीग और पाकिस्तान के ख़िलाफ़ लिखने के जुर्म में लीगी उल्मा मुझसे बेहद बरहमो-नाराज़ थे- नाज़िश प्रतापगढ़ी,* १०.प्रेम, प्यार, ११.बुद्धि-विवेक, १२.नग्न नृत्य, १३.लूटमार, तबाही,

मेरे अहबाबे-बदज़न! तुमने आख़िर किस तरह समझा।
कि इन हौले-आफ़्रीं[१] बातों से मैं यकसर हूँ बेगाना।
जो बस चलता तो मैं तुम को दिखाता चीरकर सीना।
वो आलम है कि दूभर हो रहा है दो घड़ी जीना।
हज़ारों ग़म कि जिन पे रो के भी मैं रो नहीं सकता।
हज़ारों ज़ख़्म हैं जिनका मुदावा[२] हो नहीं सकता।
ये ग़म है बाग़बानों ने गुलिस्तानों को लूटा है।
ये ग़म भी है कि इंसानों ने इंसानों को लूटा है।
ये सद्मा जानता है नंगे-हस्ती हर बशर हमको।
ये सद्मा भी कि दुनिया ने कहा है जानवर हमको।

निहायत ग़म है मुझको अपनी महफ़िल की तबाही का।
गिला बेहद है अरबाबे-वतन[३] की कमनिगाही का।

मगर अय दोस्तो! क्या ज़ुल्म को रोका नहीं मैंने।
वतनवालों की गुमराही पे क्या टोका नहीं मैंने।
इसी अख़बार* के सफ़हे[४] पे आयी हैं वो नज़्में भी।
कि जिनमें खुल के मैंने इन फ़सादों की मज़म्मत[५] की।
वो नज़्में वहशियों के हक़ में जो नश्तर हैं, ख़ंजर हैं।
जो हर गुमराह की ख़ातिर हिक़ारत[६] के समन्दर हैं।
वो नज़्में लानतें है जिनमें उन फ़िरक़ापरस्तों[७] पर।
जहन्नम बन के टूटी हैं जो उन शोला-ब-दस्तों पर।
मेरी इस रास्तगोई[८] पर सभी नाराज़ रहते हैं।
जो ये 'मुर्तद' बताते हैं तो वो 'ग़द्दार' कहते हैं।
मगर इन दोनों से हटकर मैं अपनी राह चलता हूँ।
न इस साँचे में ढलता हूँ न उस साँचे में ढलता हूँ।
दुआ करता हूँ मैं बारे-इलाही[९]! इस्तिक़ामत[१०] दे।
मुझे ऐलाने-हक़ करने की जुर्अत[११] दे, जसारत[१२] दे।

१.भय पैदा करनेवाली, कष्टकारी, २.चिकित्सा, उपचार, ३.देशवासी, * आशय 'नयी दुनिया' अख़बार (लखनऊ) से है, ४ .पृष्ठ, ५.निन्दा, ६.घृणा, नफ़रत, ७.साम्प्रदायिक, ८.सत्यवादिता, ९.अल्लाह को सम्बोधन, १०.दृढ़ता, मज़बूती, ११.साहस, हिम्मत, १२.वीरता, दिलेरी,

वतनवालों की हर ख़ामी उन्हें खुलकर बताने की।
ख़िलाफ़े-ज़ुल्म हिम्मत दे मुझे आवाज़ उठाने की।

मेरा मस्लक[१] न दुनिया है न सच्चाई से हटना है।
मगर जो घर के झगड़े हैं उन्हें घर में निपटना है।
मेरी ये अक़्ले-नाक़िस[२] मुझसे सिर्फ़ इक बात कहती है।
ज़माने भर में दुखड़ा रोने से अपनी ही सुब्की[३] है।
बयाँ था जिस जगह अपने वतन से अपनी उल्फ़त का।
वहाँ इक ज़िक्रे-नाहंज़ार[४] का आख़िर महल क्या था।
न हो जो वक़्त से उसको मुज़ख़्राफ़ात[५] कहते हैं।
जो मौक़े से कही जाती है उसको बात कहते हैं।
ज़रूरत बेज़रूरत किसलिए छेड़ूँ वही क़िस्से।
कि जिससे मेरी इज़्ज़त पे, मेरी अज़्मत पे हर्फ़ आये।
'निकल जाती जब ख़ुश्बू तो गुल बेकार होता है।
बशर राज़े-दरूँ[६] कहकर ज़लीलो-ख़्वार[७] होता है।'
वो सब होते हैं अपने, मात जिनसे खायी जाती है।
सुना है घर ही के भेदी से लंका ढायी जाती है।
मैं अपने घर की बातें ग़ैर की महफ़िल में दोहराऊँ।
दुआ करता हूँ ये दिन आने से पहले ही मर जाऊँ।
मुख़ातिब मेरे ख़त का दोस्तो इक ऐसी हस्ती है।
कि जो बेशक मेरा भाई है, लेकिन ग़ैरमुल्की है।

किसी भी गैरमुल्की से शिकायत मुल्कवालों की।
एजाज़त हो तो पूछूँ फिर किसे कहते हैं ग़द्दारी?

१.रास्ता, पद्धति, २.कमअक़्ल, मंदबद्धि, ३.बदनामी, बेइज़्ज़ती, ४.अधम या नीच का ज़िक्र, ५.झूठी बातें, बकवास, ६.हृदय का भेद, दिल की बात, ७.अपमानित, तिरस्कृत,

इन्तिबाह[१]

(हिन्द-ओ-पाक में होनेवाले फ़सादों से मुतासिर होकर)

रचनावर्ष सन् 1964 ईस्वी

सुनो! गर सुन सको ज़ेहनियत बीमार के लोगो!
इधर के रहनेवालों और सरहद पार के लोगो!
ख़बर है मुझको गर्दे-तीरगी[२] से अट चुके हो तुम।
मैं ये भी जानता हूँ राहे-हक़ से हट चुके हो तुम।
दिखाऊँगा मैं आईना तो आतिश ज़ेरे-पा[३] होगे।
मुझे एहसास है तुम मेरी बातों पे ख़फ़ा होगे।
मगर ज़ुल्मो-सितम को रोक देना फ़र्ज़ है मेरा।
ग़लतकारों को बढ़कर टोक देना फ़र्ज़ है मेरा।
मैं इक शायर किसी से मुझको दबना है न डरना है।
कोई ख़ुश हो कि नाख़ुश, मुझको अपना काम करना है।

क़लम के वास्तों से आज इक पैग़ाम देता हूँ।
ये पैग़ामे-सदाक़त[४] मैं तुम्हारे नाम देता हूँ।

इधर के रहनेवालो और सरहद पार के लोगो!
सुनो गर सुन सको तुम अय ग़लतअत्वार[५] के लोगो!
तुम्हारे रास्ते पर मश्अले-इर्फ़ां[६] जलाता हूँ।
मैं तुमको आज दीन और धर्म के माने बताता हूँ।
सुनो लुत्फ़ो-मुहब्बत धर्म का पैग़ाम होता है।
फ़क़त बाराने-रहमत[७] मक़्सदे-इस्लाम होता है।

---

१ चेतावनी २.अँधेरा, ३.पाँव के नीचे अंगार होना अर्थात् तिलमिला उठना, ४.सत्य का सन्देश, ५. ग़लत आचरण, ६.ज्ञान की मशाल, ७.रहमत (कृपा) की बारिश,

करम फ़रमाये जो भाई पे उसको राम कहते हैं।
जो ग़ैरों को भी अपनाये उसे इस्लाम कहते हैं।
अहिंसावाद कब ज़ीरूह[1] पर ख़ंजर चलाता है।
मुसल्माँ ज़िम्मियों[2] को अपनी जाँ देकर बचाता है।
फ़ुग़ाँ[3] है, दौलते-अख़्लाक़े-बेह्तर[4] खो गयी तुमसे।
ख़ुद इंसाँ की सरअफ़राज़ी[5] निगूँ-सर[6] हो गयी तुमसे।
इधर गौतम के मत से अपना रिश्ता तोड़ बैठो हो।
उधर पैग़म्बरे-बरहक़[7] का रस्ता छोड़ बैठे हो।
जो रह जाओगे होकर दह्र[8] में बदनाम, क्या होगा।
तुम्हीं सोचो कि इस आग़ाज़ का अंजाम क्या होगा।
ख़ुद अपने भाइयों के रंज का सामान बनते हो।
तबाही-ए-वतन का इक नया उन्वान[9] बनते हो।
नतीजा क्या निकालोगे तुम इस ग़फ़्लतशिआरी[10] से।
मिलेगा क्या तुम्हें इंसानियत की शर्मसारी से।
कहाँ ठहरोगे आख़िर तंग इस दर्जा नज़र करके।
कहाँ पहुँचोगे तुम नफ़्रत को अपना हमसफ़र करके।
तुम्हारे अहदे-मुस्तक़्बिल[11] पे ज़ुल्मत[12] बनके छायेगी।
तुम्हारी हर ग़लतकारी तुम्हें नीचा दिखायेगी।
तुम्हारा हर ग़लत-इक़्दाम[13] इक दिन रंग लायेगा।
मुसल्सल[14] जुर्म तुम दोनों को लेकर डूब जायेगा।

न सँभलोगे तो मिट जाओगे बेकिरदार के लोगो!
इधर के रहनेवालो और सरहद पार के लोगो!

१.प्राणधारी, २.इस्लामी राज्य में ग़ैर मुस्लिम नागरिक, ३.दुहाई है, दुख है, ४.उत्तम आचरण की दौलत, ५.सिर ऊँचा करना, ६.सिर झुकाना, ७.सत्य के पैग़म्बर (सन्देशवाहक), ८.युग, ९.शीर्षक, १०.असावधानी, ११.भविष्य, १२.अंधकार, १३.ग़लत काम करने की पहल, १४.लगातार,

हम फ़िरक़ापरस्त[१] नहीं हैं

रचनावर्ष सन् 1962 ईस्वी

हैं ख़ुद अपने ही दुख दर्द से नीमजाँ[२]।
हमको फ़िरक़ापरस्ती को फ़ुर्सत कहाँ।

हम जफ़ाकश[३] हैं, हम लोग मज़्दूर हैं।
नफ़्रतो-कीनओ-बुग़्ज़[४] से दूर हैं।
हैं कभी नग़माख़्वाँ[५] और कभी ख़ूँफ़िशाँ[६]।
हममें हिन्दू कहाँ हम मुसल्माँ कहाँ।
श्याम गाहक है, रहमान से काम है।
एक मुवक्किल समद दूसरा राम है।
कुफ्रो-ईमाँ से बचकर कहाँ जायें हम।
और बचते रहें भी तो क्या खायें हम।
हम जो देही[७] किसान और देहक़ान[८] हैं।
धर्मो-मज़हब के झगड़ों से अन्जान हैं।
हम मुहर्रम में ताशा बजाते भी हैं।
होली आये तो मिलजुल के गाते भी हैं।
गाँव का गाँव आपस में भाई-बहन।
एक कुन्बे के हैं रहमत और रामधन।
हममें लड़ मरने का कोई इम्काँ[९] नहीं।
खेत हिन्दू नहीं, हल मुसल्माँ नहीं।

१.साम्प्रदायिक, २.आधी जान का अधमरा, ३.मेहनती, शरीर पर कष्ट उठानेवाला, ४.द्वेष-वैमनस्य आदि, ५.गीत गानेवाला, ६. ख़ून बहाने या बरसानेवाला, ७.गाँव का, ८.देहाती, गँवार, ग्रामीण, ९.सम्भावना,

ख़्वाब में भी कभी हम न पहुँचे वहाँ।
पैदा होते हैं साँप और सपेरे जहाँ।
हमको फ़िरक़ापरस्ती की फ़ुर्सत कहाँ।

ये तो कुछ अहले-दौलत का व्यापार है।
कुछ जिहालतमआबों का किरदार है।
चन्द अहले-सियासत का ये काम है।
जिनके ज़ेहनों को मज़हब का सर्साम[१] है।
जिनको दुनिया ने बख़्शे नहीं दर्दो-ग़म।
जिन पे टूटे नहीं ज़िन्दगी के सितम।
जो समझते हैं सिर्फ़ अपने मतलब को दीं।
जिनके नज़्दीक इंसानियत कुछ नहीं।
जो वफ़ादार क़ौमो-वतन के नहीं।
हैं चमन ही में लेकिन चमन के नहीं।
कुछ शरारत-पसन्दों ने धन्धा किया।
एक मछली ने तालाब गन्दा किया।
चन्द फ़ित्नातराज़ों[२] की है दास्ताँ।
क़ौम वर्ना है इक जिस्म और एक जाँ।
हमको फ़िरक़ापरस्ती की फ़ुर्सत कहाँ।

दोस्तो! हम सब आदम की औलाद हैं।
और सदियों से इक साथ आबाद हैं।
सख़्ततर[३] मारिके[४] थे जो, सर कर चुके।
कितने ही काम इक साथ हम कर चुके।
एक-सा दर्द है एक-से ग़म भी हैं।
जिन फ़ज़ाओं में तुम हो वहीं हम भी हैं।
एक माया है और एक ही शान है।
एक भगवान है एक रहमान है।
कुफ्र हो तुम न हम सिर्फ़ ईमान हैं।
तुम भी इंसान हो हम भी इंसान हैं।

१.एक प्रकार की बीमारी, सन्निपात, २.उपद्रवी, ३.सख़्त-से-सख़्त, ४.लड़ाई, संग्राम,

एक रस्ता है और एक हैं मर्हले[१]।
एक धरती पे एक आसमाँ के तले।
एक ही मुल्क के रहनेवाले हैं हम।
एक ही चाँद के गिर्द हाले हैं हम।
एक ही लौ की मानिन्द जलना भी है।
एक ही लै में हम सब को ढलना भी है।
एक ही जाम से सब को पीना भी है।
एक ही साथ मरना भी, जीना भी है।
हम पे छायी हैं आलाम[२] की बदलियाँ।
दूर करती हैं ये ग़म की परछाइयाँ।
दे रहा है सदा सबको हिन्दोस्ताँ।
हमको फ़िरक़ापरस्ती की फ़ुर्सत कहाँ।

१.गंतव्य, २. दुख, मुसीबतें,

श्री कृष्ण

रचनावर्ष सन् 1967 ईस्वी

इक फ़िरक़ा[१] ओ इक ज़ात[२] में महदूद[३] नहीं है,
सिर्फ़ एक ही कुन्बे न घराने के लिए है।
हिन्दू हो कि मुस्लिम हो, वो ईसाई कि सिख हो,
तू सब का है और सारे ज़माने के लिए है।

पस्त किरदारे–ज़माना भी था, इंसान भी पस्त,
पस्तियों में तू उठा एक मिनारे[४] की तरह।
फूल की तरह महकता है बयाबान[५] में तू,
तू चमकता है अँधेरे में सितारे की तरह।

तुझको जो चाहे बना दें ये पुजारी तेरे,
वरना तू दर्से–सदाक़त[६] के सिवा कुछ भी नहीं।
ये अलग बात कि हम भूल चुके हैं वर्ना।
तेरा पैग़ाम मुहब्बत के सिवा कुछ भी नहीं।

तेरा पैग़ामे–मुहब्बत है हर इंसाँ को क़ुबूल।
हिन्दुओं ही के लिए तुझको जो समझें तो है भूल।
सब पे लाज़िम कि जलाये रहें मश्अल[७] तेरी,
सब की मीरास[८] तेरे होठों से बरसे हुए फूल।

१.सम्प्रदाय, २.नस्ल, जाति, ३.सीमित, ४.स्तम्भ, ५.जंगल, ६.सत्य का उपदेश, ७.मशाल, ८.विरासत,

आदमी कहते हैं जिसको वो पुजारी है तेरा,
ज़िन्दगी कहते हैं जिसको तेरे क़दमों की है धूल।
तुझको हर अहद का इंसान कहेगा अपना,
तू हर इक दौरे-ज़माना में रहेगा मक़्बूल[१]।
आदमीयत के पुजारी तुझे करते हैं सलाम,
तू सदाक़त[२] का पयम्बर[३] है, मुहब्बत का रसूल।

१.स्वीकार, २.सत्य, ३.सन्देशवाहक,

इन्तिज़ार और अभी

(तुलसी-जयन्ती के मौक़े पर)

रचनावर्ष सन् 1963 ईस्वी

तू मंज़िले-सुख़न[१] है, मैं उड़ता ग़ुबार हूँ।
तू रूहे-फ़स्ले-गुल[२], मैं गदाए-बहार[३] हूँ।
तू शम्अे-फ़िक्रो-फ़न[४] है, मैं परवानावार[५] हूँ।
तू जाने-अंजुमन[६], मैं अक़ीदतगुज़ार[७] हूँ।
डर-डर के कोई जुम्बिशे-लब[८] कर रहा हूँ मैं।
तुलसी! तुझे सलामे-अदब कर रहा हूँ।

दावाए-हमसरी[९] करे, किसकी मजाल है।
बज़्मे-सुख़न[१०] में ज़ात[११] तेरी बेमिसाल है।
मज़्मून[१२] हैं बुलन्द, मुक़द्दस[१३] ख़याल है।
हक़[१४] है कि तेरी फ़िक्रे-सुख़न[१५] लाज़वाल[१६] है।
कुछ इस अदा से अर्ज़े-हुनर कर गया है तू।
कंकर को आब दे के गुहर[१७] कर गया है तू।

हर उक़्दए-हयाते-बशर[१८] खोलता हुआ।
कानों में जैसे शहदो-शकर घोलता हुआ।
लफ़्जों को मोतियों की तरह रोलता हुआ।
जनता के पास, उन्हीं की तरह बोलता हुआ।
पहुँचा जो तू तो बज़्मे-सुख़न आम हो गयी।
जो बात मुँह से निकली वो इल्हाम[१९] हो गयी।

१.साहित्य की मंज़िल, २.बसन्त की आत्मा, ३.बहार (बसन्त) की भिक्षा माँगनेवाला, ४.चिन्तन और कला की शमा, ५.परवाने की तरह, ६.सभा में अपनी उपस्थिति से श्रीवृद्धिकर्ता, ७.श्रद्धावान, ८.लब हिलाना अर्थात् कुछ कहना, ९.समानता या बराबरी का दावा, १०.साहित्य-सभा, ११.अस्तित्व, हस्ती, १२.विषय, १३.पवित्र, १४.सत्य, १५.साहित्य-चिन्तन, १६.अक्षय, अनश्वर, १७.मोती, १८.मानव-जीवन की गाँठ, १९.आकाशवाणी,

तस्लीम[१] है कि शायरे-मोजिज़बयाँ[२] है तू।
तस्लीम है कि नुक्तावरो-नुक्तादाँ[३] है तू।
है एतराफ़[४] रहबरे-मंज़िलनिशाँ[५] है तू।
और ये भी एतराफ़ कि हक़[६] की ज़बाँ है तू।
इस दर्जा जानकर भी तुझे जानते नहीं।
तेरे पयामे-ज़ीस्त[७] को हम मानते नहीं।

हम में कोई नहीं जो मुहब्बतशिआर[८] हो।
मैदाने-ज़िन्दगी में जो मर्दानावार[९] हो।
हनुमान के ख़ुलूस[१०] का आईनादार हो।
है कौन? बाप का जो इताअतगुज़ार[११] हो।
सीता की पाकबाज़ी का हममें चलन नहीं।
भाई तो बेशुमार, कोई लक्ष्मन नहीं।

हर मोड़ पर हयात का पैग़ाम चाहिए।
इल्मे-बशिष्ठ[१२] आज सरेआम चाहिए।
झूठे नगर में सच का कहीं नाम चाहिए।
रावन तो हर तरफ़ हैं हमें राम चाहिए।
तुलसी! अभी हयाते-बशर[१३] है असीरे-ग़म[१४]।
किस मुँह से फिर कहें कि तुझे जानते हैं हम।

जब हर तरफ़ मिलेगी रहो-रस्मे[१५] दोस्ती।
जब हर ज़बाँ पे होगी मुहब्बत की रागिनी।
जब हर नज़र में जागेगा ज़ौक़े-ख़ुदआगही[१६]।
जब आम कर सकेंगे तेरा दर्से-ज़िन्दगी[१७]।
उस वक़्त तेरे सच्चे परस्तार[१८] होंगे हम।
तुझ को अज़ीम[१९] कहने के हक़दार होंगे हम।

१.स्वीकार, २.वाग्विदग्ध शायर, ३.कला-विशेषज्ञ, काव्य-मर्मज्ञ, ४.स्वीकार, ५.मंज़िल का पता देनेवाला, पथ-प्रदर्शक, ६.सत्य, ७.जीवन-सन्देश, ८.मुहब्बत करनेवाला, ९.मर्द की तरह, १०.निश्छलता, ११.आज्ञाकारी, १२.बशिष्ठ का ज्ञान, १३.मानव-जीवन, १४. ग़म की क़ैद में, पीड़ायुक्त, दुखित, १५.मेल-मिलाप, १६.आत्मज्ञान का बोध, १७.जीवन-दर्शन, १८.समर्थक, उपासक, १९.महान्

हम जागते रहें

रचनावर्ष सन् 1962 ईस्वी

साज़े-हयात[१] छेड़ के गाने चले थे हम।
शम्अें क़दम-क़दम पे जलाने चले थे हम।
अपने वतन को ख़ुल्द[२] बनाने चले थे हम।
वक़्ते-रवाँ[३] को राह दिखाने चले थे हम।

हम चाहते ये थे कि नया रूप-रंग हो।
काटें वो बेसुतून[४] कि फ़रहाद दंग हो।

मिट्टी को जामो-साग़रो-मीना में ढालकर।
ज़र्रों को कर रहे थे सुरैया[५] उछालकर।
इक-इक कली को सीनओ-दिल में सँभालकर।
सहरा[६] से ला रहे थे गुलिस्ताँ निकालकर।

मैख़ानए-जहाँ में सुबू[७] बन रहे थे हम।
तारीख़[८] की रगों में लहू बन रहे थे हम।

यूँ ज़िन्दगी को गर्मे-अमल[९] चाहते थे हम।
ता दूर इक फ़ज़ाए-ग़ज़ल चाहते थे हम।
हर-हर नफ़स[१०] में कोई कँवल[११] चाहते थे हम।
हर-हर क़दम पे ताजमहल चाहते थे हम।

नागाह[१२] रात आ गयी इस जल्वागाह में।
बादे-ख़िज़ाँ[१३] ने टोक दिया हम को राह में।

१.जीवन-वाद्य, जीवन-संगीत, २.स्वर्ग, ३.समकालीन युग, ४.वो पहाड़ जिसे फ़र्हाद ने काटा था, ५.रोशनी की झाड़, ६.मरुस्थल, ७.घड़ा, ८.इतिहास, ९.गतिशील, कर्मशील, १०.साँस, ११.कमल, १२.अचानक, १३.पतझड़ की हवा,

इस हादसे ने क़ौम को बेदार[१] कर दिया।
जो सो रहे थे उनको ख़बरदार कर दिया।
कलियों को आग उगलने पे तैयार कर दिया।
हर शाख़े-गुल[२] को खींच के तल्वार कर दिया।

जो थे सुकूँपसन्द वो तूफ़ान बन गये।
हम अहले-हिन्द क़ह्र का उन्वान बन गये।

लाया है वक़्त हमको फिर ऐसे ही मोड़ पर।
मैदाँ में आ गया है जहाँ एक-एक बशर[३]।
हर फ़र्द उठा है दस्ते-शुजाअत[४] को चूमकर।
तल्वार से भी तेज़ो-रवाँ हो गयी नज़र।

आहन[५] की तरह सख़्त हुआ फूल का मिज़ाज।
इंसा तो क्या ज़मीन भी लल्कार उठी है आज।

कल सारे लोग मोम की सूरत रहे थे नर्म।
लाज़िम हुआ है आज कि हो जायँ सख़्तो-गर्म।
अपना कोई भी रूप नहीं हम को वज्हे-शर्म।
वो भी हमारा धर्म था ये भी हमारा धर्म।

मह्फ़िल में नग़माख़्वाँ[६] थे मुहब्बत के वास्ते।
मैदाँ में निकले अपनी हिफ़ाज़त के वास्ते।

तारीख़े-ज़िन्दगी को है इस बात की ख़बर।
भारत रहा है अम्नो-सुकूँ का पयामबर[७]।
हिन्दोस्तान क़ाफ़िलए-दिल का राहबर।
हर दौर में चला है अहिंसा की राह पर।

इस राह से कभी-कभी हम दूर भी हुए।
रावन मिले तो जंग पे मज्बूर भी हुए।

१.जाग्रत, २.फूल की डाली, ३.आदमी, ४.वीरता का हाथ, ५.लौह, ६.गीत गानेवाला, ७.सन्देशवाहक,

हम लोग हक़्शिआर[१] हैं, मुंसिफ़मिज़ाज[२] हैं।
अम्नो-सुकूँ की जान, अहिंसा की लाज हैं।
हम प्रेम के पुजारी हैं, मेमारे-ताज[३] हैं।
हम लोग जंगबाज़ न कल थे, न आज हैं।

हाँ ये कि अब जमाल[४] में आया जलाल[५] भी।
बंसी के साथ हमने उठा ली है ढाल भी।

और अब जहाँ को देंगे हम इस बात की ख़बर।
मुल्क एक, क़ौम एक है और एक राहबर[६]।
हर शोबए-हयात[७] में बाँधे हुए कमर।
हिन्दोस्ताँ बढ़ेगा तरक़्क़ी की राह पर।

ख़ाके-वतन से ग़ुंचओ-गुल तो खिलायेंगे।
लेकिन अब उनको तेग़ो-तबर[८] भी बनायेंगे।

अपना उसूले-अम्न[९] भी हम मानते रहें।
इंसान को रफ़ीक़[१०] ही गरदानते रहें।
लेकिन रुख़े-ज़माना भी पहचानते रहें।
क्या कर रहा है कौन, इसे जानते रहें।

मुम्किन है अब भी राख में कुछ आग हो कहीं।
अपनी ही आस्तीं में कोई नाग हो कहीं।

राही, चिराग़, रास्ते, सब जागते रहें।
क्या एतबारे-फ़ित्नए-शब[११], जागते रहें।
हाँ, अहले-हर्बो-अहले-अदब[१२], जागते रहें।
हम लोग जाग उठे हैं तो अब जागते रहें।

इस दौर में ख़ुलूसो-मुहब्बत की मात है।
चेह्रों पे आफ़्ताब है, सीनों में रात है।

१.सत्यवादी, २.न्यायप्रिय, ३.ताज के निर्माणकर्ता, ४.सुन्दर चेहरा, ५.तेज-प्रताप (यहाँ आशय क्रोध से है), ६.पथ-प्रदर्शक, ७.जीवन-क्षेत्र, ८.तल्वार, फ़र्सा, ९.शान्ति का सिद्धान्त, १०.दोस्त, ११.रात में उपद्रव करनेवाले, १२.युद्धवाले और साहित्यवाले,

उठ जाग ऐ मुसल्माँ

रचनावर्ष सन् 1962 ईस्वी

ऐ मुसल्माँ! जाग, तेरा इल्मो-फ़न[१] ख़तरे में है।
तेरा तन ख़तरे में है, तेरा वतन ख़तरे में है।
जाग तेरे इश्क़ का दीवानापन ख़तरे में है।
जाग हाँ जाग, आज सरमद का चमन ख़तरे में है।
तेरा हर फ़िरक़ा, तेरी हर अंजुमन[२] ख़तरे में है।
उठ, तेरा ईमान ख़ाकम दर दहन ख़तरे में है।
उठ कि फिर तेरी ज़ुरूरत है शहादतगाह[३] को,
सरफ़रोशी[४] की हर इक रस्मे-कुहन[५] ख़तरे में है।
सोचकर जिसको लरज़ जाता है अँग्रेज़ आज भी,
टीपुए-जाँबाज़ का वो बाँकपन ख़तरे में है।
तेरी तह्ज़ीबे-दरख़्शाँ[६] तुझको देती है सदा[७],
'मीर' का, 'ग़ालिब' का अंदाज़े-सुख़न ख़तरे में है।

तेरी ख़ुशियों को है ख़तरा, तेरा ग़म ख़तरे में है।
ख़ुद तेरा नामूस[८] तेरी ही क़सम ख़तरे में है।

हर ज़ियारतगाहो-जाए-बन्दगी[९] ख़तरे में है।
बारगह हर औलिया-अल्लाह की ख़तरे में है।
शाहमीना की फ़ज़ाए-सरमदी ख़तरे में है।
रोशनी ख़्वाजा कलीमुल्लाह की ख़तरे में है।

१.ज्ञान और कला, २.सभा, संस्था, ३.शहीद-स्थल, ४.जान की बाज़ी लगाना, जाँनिसारी, ५.पुरानी रस्म, ६.प्रकाशमान तह्ज़ीब, उज्जवल सभ्यता, ७.आवाज़, ८.लज्जा, मर्यादा, ९.तीर्थस्थली और पूजास्थली,

मस्जिदे-जामा का हुस्ने-सादगी ख़तरे में है।
ताज की इक-इक अदाए-दिलबरी ख़तरे में है।
उठ कि ख़तरे में है देवा की मुक़द्दस[१] सरज़मीं,
कलियरो-अजमेर की पाकीज़गी ख़तरे में है।
काकिओ-ख़्वाजा निज़ामुद्दीन कहते हैं कि उठ,
उठ तरीक़त[२] की महकती चाँदनी ख़तरे में है।
लाल क़िला, ये गुज़िश्ता अज़्मतों का इक निशाँ,
उठ कि उसकी ज़िन्दगी ता बन्दगी ख़तरे में है।

तेरी तारीख़ और तेरी दास्ताँ ख़तरे में है।
अय मुसल्माँ उठ तेरा हिन्दोस्ताँ ख़तरे में है।

उठ कि हर दरगाह की इज़्ज़त बचानी है तुझे।
फ़ैज़े-रूहानी[३] की ये दौलत बचानी है तुझे।
इस फ़ज़ाए-क़ुद्स[४] की हुर्मत[५] बचानी है तुझे।
ये ज़मीने-रहमतो-बरकत बचानी है तुझे।
उठ बहादुर शाह की इज़्ज़त बचानी है तुझे।
बख़्त ख़ाँ की हिम्मतो-जुर्अत बचानी है तुझे।
शेख़े-सरहिन्दी से पहुँची जो इमामुल्हिन्द तक,
वो रिवायत[६] तो बहरसूरत[७] बचानी है तुझे।
जिसके हर चप्पे पे है तेरे शहीदों की लहू,
उठ कि वो धरती बहरक़ीमत बचानी है तुझे।
अपने मुल्क अपने वतन के नाम पर क़ुर्बान हो,
अपनी हस्ती, अपनी ही क़ीमत बचानी है तुझे।

पासबानी[८] इस चमन की तेरे ज़िम्मे क़र्ज़ है।
कोई उठ्ठे या न उठ्ठे तुझ पे उठना फ़र्ज़ है।

१.पवित्र, २.ब्रह्म-ज्ञान, अध्यात्म, ३.अध्यात्म-कीर्ति, ४.पवित्र वातावरण, ५.सम्मान, प्रतिष्ठा, ६.परम्परा, ७.हर सूरत से, ८.निगरानी,

ज़बान से नफ़्रत क्यूँ

रचनावर्ष सन् 1972 ईस्वी

जहाँ भी छाँव घनी हो क़याम[१] करते चलो।
अदब[२] जहाँ भी मिले एहतराम[३] करते चलो।
हर इक ज़बाँ से सलामो-कलाम[४] करते चलो।
जुनूने-ज़ीस्त[५] को तम्ईज़े-शक्लो-सूरत[६] क्यूँ।
चमनपरस्तों में तफ़्रीक़े-रंगो-निक्हत[७] क्यूँ।
कोई ज़बान हो इन्साँ को उससे नफ़्रत क्यूँ।
ज़बान पाक है गाँवों की गोरियों की तरह।
ज़बाँ अज़ीम है माँओं की लोरियों की तरह।

ज़बाँ तसल्सुले-तारीख़े-ज़िन्दगानी[८] है।
ज़बाँ मनाज़िले-तह्ज़ीब[९] की कहानी है।
ज़बान बहते हुए वक़्त की रवानी है।
नज़र में हो जो बुलन्दी भी और वुस्अत[१०] भी।
तो हर ज़बान में एक हुस्न भी है, अज़्मत[११] भी।
न एक फ़र्द[१२] की है और न एक मज़हब की।
ज़बाँ विरासते-इंसानियत है हम सब की।
वो रात का है पुजारी, सहर[१३] का दुश्मन है।
जो है ज़बान का दुश्मन, बशर[१४] का दुश्मन है।

१.ठहरना, रुकना, २.साहित्य, कला, ३.सम्मान, ४.सलाम और बातचीत, ५.जीवनोन्माद, जीवन-विक्षिप्तता, ६.रूप-स्वरूप की तमीज़, ७.रंग और ख़ुश्बू का फ़र्क़ करना, ८.जीवन का विकास-क्रम, ९.सभ्यता की मंज़िलें, १०.विस्तार, व्यापकता, ११.महानता, श्रेष्ठता, १२.एक व्यक्ति, १३.सुबह, १४.व्यक्ति,

ज़मीं का हुस्न है, खेतों की ताज़गी है ज़बाँ।
रहट की लय है तो पनघट की रागिनी है ज़बाँ।
गली का शोर, घरों की हुमाहुमी है ज़बाँ।
जुनूने-ज़ीस्त की झुरमुट है, गुनगुनाहट है।
ज़बाँ हयात के होंठों की मुस्कुराहट है।
फ़रेबो-मस्लेहतो-मक्रो-रस्मियात[१] नहीं।
रिया[२] का ज़िक्र बयाने-तकल्लुफ़ात[३] नहीं।
ज़बान अहले-सियासत के बस की बात नहीं।

ज़बाँ मचलती है मिट्टी पे चहचहों की तरह।
ज़बाँ निकलती है चिल्मन से ज़मज़मों[४] की तरह।
ज़बाँ उबलती है आँगन से क़हक़हों की तरह।
ज़बान तनती है चौपाल में जवाँ की तरह।
ज़बान बनती है बैठक में दास्ताँ की तरह।
ज़बान ढलती है बाज़ार में, दुकानों में।
ज़बान चलती है कूचों[५] में, कारख़ानों में।
ज़बाँ क़दम-ब-क़दम सीढ़ियों पे चढ़ती है।
ज़बान प्यार-मुहब्बत से आगे बढ़ती है।
न दफ़्तरों न कहीं फ़ाइलों में धुलती है।
ज़बान धरती के सीने से लग के चलती है।

ज़बान क़ौम की इज़्ज़त भी है, ग़ुरूर भी है।
ज़बाँ अवाम की मेह्नत भी है, शुऊर भी है।
शुऊरे-ज़ीस्त[६] से आख़िर हमें अदावत क्यूँ।
कोई ज़बान हो, इंसाँ को उससे नफ़्रत क्यूँ।
ज़बान पाक है गाँवों की गोरियों की तरह।
ज़बाँ अज़ीम है माँओं की लोरियों की तरह।

---

१. फ़रेब-स्वार्थ-धोखा आदि, २.पाखण्ड या आडम्बर, ३.औपचारिक वक्तव्य या औपचारिकताओं का वक्तव्य, ४.गीत, नग़्मा, ५.गलियाँ, ६.जीवन-सृजन,

अज़ल[१] से अब तक

रचनावर्ष सन् 1971 ईस्वी

तारीख़े-ज़िन्दगी[२] को है मालूम दोस्तो!
कोई भी हादसा हो, अचानक हुआ नहीं।
कोई भी खेल धरती की ख़ातिर नया नहीं।

पहले भी इस ज़मीं के ख़ुदावंदे ज़ुल्जलाल[३],
ये हुक्म दे चुके हैं कि गर्दन उतार लो।
सरकश[४] हों, सिरफिरे हों तो सूली पे वार लो।
बोलें जो लोग उनकी ज़बानें तराश दो।
माँगे जो कोई हक़ तो उसे उसकी लाश दो।
पहले भी सैदे-ज़ुल्मो-सितम[५] हो चुके हैं लोग।
पहले भी अपने नामो-निशाँ खो चुके हैं लोग।
धरती पे जाने कितना लहू बो चुके हैं लोग।

तारीख़े-ज़िन्दगी ये बताती है दोस्तो!
हर कुश्तो-ख़ूनो-क़त्लो-तबाही का सिलसिला।
दे ही गया कुछ और भी जीने का हौसला।
सीने पे जिस क़दर भी चमन ज़ख़्म का खिला।
अज़्मे-हयात[६] और भी इंसान को मिला।
तेग़े-जफ़ा[७] से जितने भी बाज़ू क़लम हुए।
तारीख़े-हुर्रियत[८] के वरक़ पर रकम[९] हुए।
कुछ उनमें तीर बन गये और कुछ अलम[१०] हुए।
लौ दे उठा ज़मीन पे हर क़तरा ख़ून का।

१.अनादि काल, वो समय जब सृष्टि की रचना हुई, २.जीवनेतिहास, ३.जिनको ख़ुदा से बहुत मर्तबा हासिल है, ४.उद्दण्ड, ५. ज़ुल्मो-सितम का शिकार, ६.जीवन की उच्चता, ७. जफ़ा की तल्वार, ८.स्वतंत्रता का इतिहास, ९.दर्ज होना, १०.झण्डा, ध्वज,

सदियों का रास्ता भी बहुत मुख़्तसर हुआ।
जो सर कटा चराग़े-सरे-रहगुज़र हुआ।
लाशा[१] गिरा और उठ के शरीके-सफ़र हुआ।

हर कुश्तो-ख़ूनो-क़त्लो-तबाही का सिल्सिला।
सिर्फ़ एक खेल है जो नया है न देर पा।
होता है यूँ कि सिल्सिलए-ज़ुल्म के ख़िलाफ़,
करता है एहतिजाज[२] कहीं कोई इक बशर।
उठते हैं फिर हज़ारों क़दम बेशुमार सर।
ज़ख़्मों के फूल खिलते हैं दिल से नज़र तलक।
शह्रों में ख़ून बहता है सड़कों से घर तलक।
रहती है बात पहले ग़मे-रहगुज़र तलक।
फिर बढ़के जा पहुँचती है ख़त्मे-सफ़र तलक।
दो ही क़दम हैं शाम से हुस्ने-सहर[३] तलक।
दो ही नफ़्स[४] है रात का मक्सूम[५] दोस्तो!
तारीख़े-ज़िन्दगी को है मालूम दोस्तो!

पहले भी सैदे-ज़ुल्मो-सितम हो चुके हैं लोग।
पहले भी इस ज़मीं पे लहू बो चुके हैं लोग।
ज़ुल्मतकदे[६] में नूरे-सहर[७] हो चुके हैं लोग।
तारीख़े-ज़िन्दगी में अमर हो चुके हैं लोग।
ज़ंजीरे-पाओ-तौके-गुलू[८] टूटते रहे।
ज़िन्दाने-रंजो-ग़म[९] से बशर[१०] छूटते रहे।
जो शब भी आयी ज़ुल्मो-सितम की, गुज़र गयी।
इंसान फ़त्हमन्द[११] हुआ मौत मर गयी।

१.लाश, २.वाद-विवाद करना, अपने अहितकर्ता के प्रति रोष प्रकट करना, ३.सुब्ह का हुस्न, ४.साँस, ५.भाग्य, ६.जहाँ अँधेरा-ही-अँधेरा हो, ७.सुब्ह का नूर, ८.पाँव की ज़ंजीर और लोहे की गोल हँसली जो क़ैदियों के गले में डाली जाती है, ९.दुख एवं पीड़ा के बंदी, १०.आदमी, ११.विजयी,

मौसमे-गुल का सफ़ीर[१]

मेरे अज़ीज़ क़लमकारो! हमसुख़न यारो!
तुम उस गिरोहे-जिगरदार[२] के हरावल[३] हो।
कि जिससे ज़ुल्म किसी पर भी हो सहा न गया।
कि जिससे दार पे भी जा के चुप रहा न गया।
तो फिर ये बात है क्या, ये मुआम्ला क्या है,
तुम्हारे चारों तरफ़ ख़ाको-ख़ूँ है, तुम चुप हो।
वक़ारे-क़ौम[४] का पर्चम[५] निगूँ[६] है, तुम चुप हो।
फ़ज़ा निढाल है, अंदोहगीं[७] है, तुम चुप हो।
लहूलुहान तुम्हारी ज़मीं है, तुम चुप हो।

ये कौंधती हुई नफ़्रत की बिजलियाँ पैहम[८]।
ये बुग़्ज़ और तअस्सुब[९] की आँधियाँ पैहम।
कि डगमगा दिये जिसने बड़े-बड़ों के क़दम।
उफ़ुक़ से ता-ब-उफ़ुक़[१०] सिल्सिला फ़सादों का,
कराँ से ता-ब-कराँ[११] वह्शत और बर्बादी।
अदावतों की भयानक सियाहतर रातें,
के जिनमें डूबती जाती है सारी आबादी।

१.दूत, संदेशवाहक, २.साहसी और हिम्मतवालों का समूह, ३.सेना का अग्रभाग, आगे की फ़ौज का सरदार, ४. क़ौम की शोभा, ५.झण्डा, ध्वज, ६.झुका हुआ, ७.दुखित, शोकान्वित,८.लगातार, ९.द्वेष-वैमनस्य, १०.क्षितिज, ११.एक किनारे से दूसरे किनारे तक,

बड़े उरूज़[१] पे हैवानियत है, तुम चुप हो।
गिरिफ़्ते-नज़्अ[२] में इंसानियत है, तुम चुप हो।
हयात बन गयी आहो-कराह, तुम चुप हो।
वतन है सख़्त बहाले-तबाह, तुम चुप हो।

मेरे अज़ीज़ क़लमकारो! तुम ये मत सोचो,
तुम्हारे बच्चे हैं मह्फ़ूज़, तुम सलामत हो।
तुम्हें तो दोस्तो! इस तरह सोचना होगा,
कि जो भी शह्र लुटा, शह्र वो तुम्हारा था।
सितमशिआरों ने ख़ंजर तुम्हीं को मारा था।
किया था शोलों ने हम्ला तुम्हारे ही घर पर।
हुआ था वार तुम्हारे ही भाई के सर पर।
लहू तुम्हारा है क़ातिल के नोके-ख़ंजर पर।
सड़क पे था जो वो लाशा-बदन[३] दरीदा-सा[४],
वो कोई अजनबी राही नहीं था, ख़ुद तुम थे।
बुरीदा-सर[५] जो पड़ा था गली के नुक्कड़ पर,
तुम्हारा एक पड़ोसी नहीं था, ख़ुद तुम थे।

मेरे अज़ीज़ क़लमकारो! तुम ये मत सोचो,
वतन के वक़्ती मसायल[६] से तुमको क्या लेना।
कि ये करिश्मए-बाज़ीगरे-सियासत है।
और इनके बारे मे लिखना फ़क़त सहाफ़त[७] है।
अज़ीम अदब[८] से भला इनका वास्ता क्या है।
फ़न और फ़साद का आपस में राब्ता[९] क्या है।
मेरे अज़ीज़ क़लमकारो! हमसुख़न यारो!
तुम अपनी फ़िक्र[१०] का अंदाज़ो-ज़ाविया[११] बदलो।
ज़मीं का ज़िक्र सियासत नहीं मेरे यारो!
वतन की फ़िक्र सहाफ़त नहीं क़लमकारो!
जो ज़ुल्मतों को मिटाये अज़ीम अदब है वही।
जो गीत सुब्ह के गाये अज़ीम अदब है वही।

१.उठान, २.प्रणान्त, दम टूटना, ३.मृत, ४.विदीर्ण, ५.जिसका सर कटा हो, ६.समस्याएँ, ७.पत्रकारिता, ८.महान् साहित्य, ९.सम्बन्ध, १०.सोच, ११.तौर-तरीक़ा,

बशर के काम जो आये अज़ीम अदब है वही।
बयाने-अम्नो-मुहब्बत हक़ीक़तन् फ़न है।
करे जो प्यार की तब्लीग़[१] वो सुख़न फ़न है।

क़लम उठाओ कि उखड़ें सियाहियों के क़दम।
क़लम उठाओ कि लहराये नूर का पर्चम।
क़लम उठाओ कि बच जाये अज़्मते-आदम।
क़लम उठाओ क़लमज़द[२] करो फ़साद की बात।
क़लम के लब पे रहे क़ौमी इत्तिहाद[३] की बात।

तो क्या तुम्हें नहीं कुछ फ़िक्र, अय क़लमकारो!
कि चाक-चाक हुआ जा रहा है पैराहन[४]।
बरहनगी[५] की हदों में है अब निगारे-वतन[६]।
किसी की बात अलग है, किसी का कर्म अलग।
किसी की ज़ात अलग है, किसी का धर्म अलग।
कोई जो अपने लिए गढ़ रहा है नाम अलग।
तो कोई बैठ रहा ले के अपना जाम अलग।

किसी का दर्स[७] अलग है, कोई पयाम[८] अलग।
रहीम अलग है जो गर्मे-सफ़र तो राम अलग।
निशाने-राह अलग है तो रहगुज़र है अलग।
ख़यालो-फ़िक्र अलग, नुक्तए-नज़र[९] है अलग।
करे भी क़ौम तो क्यूँकर तरक़्क़ियों का सफ़र,
कि जिस्म से हैं अलग हाथ-पाँव, सर है अलग।

मैं पूछता हूँ कि तुममें से कौन चाहेगा।
कि उसके बारे में लिक्खे मुअर्रिख़े-फ़र्दा[१०]।
भटक रही थी अँधेरों में जब उरूसे-हयात,
तो अपनी ज़ात[११] की गहराइयों में तुम भी थे।

१.प्रचार-प्रसार, २. क़लमबद्ध, ३.एकता, मेल-मिलाप, ४.आवरण,वस्त्र, ५.नग्न होना, ६.वतन का रूप-स्वरूप, ७.उपदेश, ८.दृष्टिकोण, ९.आनेवाले इतिहासकार,१०. ११. ख़ुद, स्वयं,(आशय आत्मलीन रहने से है)

क़ुबूल तुमको भी था क़त्ल आदमीयत का,
दरिन्दगी वेः तमाशाइयों में तुम भी थे।

सुनो अज़ीज़ो सुनो! वक़्त की पुकार सुनो,
क़लम उठाओ, ज़माने को ये ख़बर कर दो।
कि तुमने सारे ज़माने को अपना समझा है।
तुम्हारे दिल में हर इंसाँ का दर्द रहता है।
तुम्हारी फ़िक्र का मेयार अब भी पस्त नहीं।
शिकारे-दर्द हो लेकिन शिकस्तादस्त नहीं।
तुम्हारे फ़न का मुक़द्दर ग़मे-शिकस्त नहीं।
सुनो कि फिर तुम्हें देना है इम्तिहाने-सुख़न।
सुनो कि फिर तुम्हें आवाज़ दे रहा है वतन।

तुम अब भी चुप जो रहोगे तो ये तुम्हारा चमन,
कहेगा मौसमे-गुल के सफ़ीर तुम भी नहीं।
ग़यूर तुम भी नहीं, बाज़मीर तुम भी नहीं।

१.तमाशा देखनेवाले, २.मेयार, ३.स्तर, मानदण्ड, ४.हिम्मत हार जानेवाला, ५.साहित्य की परीक्षा, ६. ग़ैरतमंद, स्वाभिमानी, ७. ज़मीरवाला

क़सम खाते हैं हम

हम अपने देश को फ़िरक़ापरस्तों से बचायेंगे।
और अपनी क़ौम को हर ख़्वाबे-ग़फ़्लत से जगायेंगे।

हमारे मुल्क में आपस की नफ़्रत चल नहीं सकती।
वतन के दुश्मनों की दाल हर्गिज़ गल नहीं सकती।
किसी भी आग में कोई सदाक़त[१] जल नहीं सकती।
अहिंसा की जनमभूमी पे हिंसा पल नहीं सकती।
अँधेरे के परस्तारों[२] को हम उठकर बतायेंगे।
हम अपने देश को फ़िरक़ापरस्तों से बचायेंगे।
और अपनी क़ौम को इस ख़्वाबे-ग़फ़्लत से जगायेंगे।

न रहने देंगे हम बुग़्ज़ो-अदावत[३] का कोई बादल।
न होने देंगे झूठे धर्म-मज़हब की कोई हलचल।
न जलने देंगे अपने शह्‌रों के रंगीं, हसीं आँचल।
न अब टूटेगी गाँवों में किसी के पैर की छागल।
मुहब्बत, अम्न, यकज़हती की मश्‌अल फिर जलायेंगे।
हम अपने देश को फ़िरक़ापरस्तों से बचायेंगे।
और अपनी क़ौम को इस ख़्वाबे-ग़फ़्लत से जगायेंगे।

१.सत्य, सच्चाई, २.पूजक, ३.द्वेष-वैमनस्य,

करेंगे दूर रोड़े और काँटे अपने रस्ते से।
जो कुछ दुख–सुख मिलेगा हम सभी झेलेंगे मिलजुल के।
मिटा डालेंगे दामन से ग़मों के दाग़ और धब्बे।
सभी ख़ुशियों से अपने मुल्क के आँचल को भर देंगे।
हम अपने देश को फ़िरक़ापरस्तों से बचायेंगे।
और अपनी क़ौम को इस ख़्वाबे–ग़फ़्लत से जगायेंगे।

जहाँ भी हो ज़रा ठहरो, कहो कुछ भी, मगर सुन लो,
क़सम खाते हैं हम अपने क़दम आगे बढ़ायेंगे।
और अपनी क़ौम को हर ख़्वाबे–ग़फ़्लत से जगायेंगे।

सुब्ह नज़्दीक है

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

अय मेरे साले-गुज़िस्ता[१] के भयानक लम्हो!
अपनी बख़्शी हुई सौग़ात भी लेते जाओ।
जा रहे हो तो ये हालात भी लेते जाओ।
जिनसे मैं और मेरा सारा वतन गुज़रा है।
रूह गुज़री है कभी और कभी तन गुज़रा है।

सालहा साल[२] से हम बेबसो-मज्बूरो-मलूल,
देखते आये हैं दुनिया को तमाशे की तरह।
देर से मुह्र-ब-लब[३] हैं किसी लाशे[४] की तरह।
एक बेगोरो-कफ़न[५] ज़िन्दा जनाज़े की तरह।
दफ़्न हैं अपने ही माज़ी[६] के सियहख़ाने[७] में,
अपनी तारीख़[८] के औराक़े-ज़बूँ[९] ओढ़े हुए।
चेह्रे से पाँव तलक चादरे-ख़ूँ ओढ़े हुए।
अपनी तारीख़ के ये काले भयानक औराक़,
दर्ज है जिनमें किसी पर कोई अफ़्सानए-क़ह्र।
है किसी सफ़्हे[१०] का उन्वान[११] फ़क़त ज़ह्र-ही-ज़ह्र।
वक़्फ़[१२] है कोई वरक़ ज़िक्रे-अदावत[१३] के लिए।
कोई तल्ख़ी के लिए है, कोई नफ़्रत के लिए।
सर-ब-ज़ानू[१४] है वरक़ कोई, कोई ख़ाक-ब-सर[१५]।
कहीं आज़ाए-बुरीदा[१६], कहीं जलते हुए घर।
मुंजमिद[१७] हो गयी है चीख़ किसी सफ़्हे पर।

१.गत वर्ष, २.वर्षों से, ३.लबों पर मुहर लगाये अर्थात् ख़ामोश, ४.लाश, ५.बिना कब्र और कफ़न, ६.अतीत, ७.अंधकार से भरा स्थान, ८.इतिहास, ९.दूषित या ख़राब पन्ने, १०.पन्ने, ११.शीर्षक, १२.विशेष रूप से निर्धारित, १३.वैमनस्य का ज़िक्र, १४.सर घुटनों पर रखे हुए (आशय उदास बैठे रहने से है), १५.जिसका सर ख़ाक पर हो, जिसके सर पर ख़ाक हो, १६.शरीर के कटे हुए अंग-प्रत्यंग, १७.जम जाना,

बाब[१] है कोई ख़ुद अपनों की सितमगारी का।
कोई आईना है मक्कारिओ-अय्यारी का।
कोई अह्वाल[२] सुनाता है तबहकारी का।
झूठ का ज़िक्र कहीं है, कहीं ग़द्दारी का।
अपनी तारीख़ के ये काले भयानक औराक़।
अर्ज़े-भारत[३] के तक़द्दुस[४] का उड़ाते हैं मज़ाक़।

कौन सोचे कि इन औराक़े-ज़बूँ के पीछे,
कितनी जाँ-सोज़[५] कराहों का जहाँ ठहरा है।
कितनी रुस्वाइयाँ क़दमों से लिपट जाती हैं।
ज़िल्लतें[६] हैं कि तआक़ुब[७] में चली आती हैं।
कहीं ज़ख़्म और कहीं दर्दे-निहाँ[८] ठहरा है।
हर वरक़ अपने लिए दुश्मने-जाँ ठहरा है।

अय मेरे साले-गुज़िश्ता के भयानक लम्हो!
जा रहे हो तो ये औराक़ भी लेते जाओ।
कि इन औराक़ से अब हमको हया आती है।
और भी बार[९] नदामत[१०] का उठाना न पड़े।
सुब्हे-फ़र्दा[११] पे इन औराक़ का साया न पड़े।

अहदे-माज़ी के अलमनाक[१२] सियहख़ाने में।
मैं हूँ महबूस[१३], मेरा ज़ेह्न तो महबूस नहीं।
और ये ज़ेह्न जो इंसान से मायूस नहीं।
मुझसे कहता है कि वो 'जाने-वफ़ा' आती है।
ताज़ा दम, तेज़ क़दम बादे-सबा[१४] आती है।
सुब्ह नज़्दीक है, ख़ुश्बूए-ज़िया[१५] आती है।

१.अध्याय, २.हालात, ३.भारत-भूमि, ४.पवित्र, ५.अपनी जान को जलानेवाला, संताप सहनेवाला, ६.अपमान, तिरस्कार, ७.भागनेवाले को पकड़ने के लिए उसके पीछे जाना, ८.छिपा हुआ दर्द, ९.भार, १०.लज्जा, ११.आनेवाली सुबह, १२.कष्टप्रद, १३. क़ैद में पड़ा हुआ, १४.शीतल-मन्द-सुगन्ध बयार, १५.रोशनी की ख़ुश्बू

पर्दए-लफ़्ज़ो-बयाँ

रचनावर्ष सन् 1961 ईस्वी

लफ़्ज़ में काट भी, सख़्ती भी रवानी भी नहीं।
ख़ूँफ़िशानी[१] भी नहीं, ज़हरचकानी[२] भी नहीं।
दर्द की बात किसी लफ़्ज़ ने जानी भी नहीं।
कैसे समझाऊँ कि एहसास का ख़ंजर क्या है।
जो रगो-पै[३] में उतरता है वो नश्तर क्या है।
हादसे दिल पे जो गुज़रे हैं वो लफ़्ज़ों में कहाँ,
क़तरा किस तरह बताये कि समन्दर क्या है।
लफ़्ज़ क्या जाने किसी ग़म का मुक़द्दर क्या है।

दिल के आईने में हर लम्हा चमकती है जो आग।
नब्ज़े-एहसास में रह-रह के धड़कती है जो आग।
मेरे माहौल में हर सिम्त भड़कती है जो आग।
लफ़्ज़ उसे हाथ लगाये भी तो जलकर रह जाय,
अल्अमाँ[४] सीनए-शायर में उबलता हुआ सोज़[५]।
लफ़्ज़ सोचे भी जो उसको तो पिघलकर बह जाय।

मेरे एहसास की शिद्दत को भुलावा देकर।
लफ़्ज़े-बेमाया[६] के इक शीशमहल को लेकर।
मोज़िजा[७] लोग दिखाते हैं सुख़नफ़हमी[८] का।
नाक़िदे-फ़न[९] तो बहुत, नाक़िदे-ग़म[१०] कोई नहीं,
मैं गिला किससे करूँ दह्र[११] की बेरहमी का।

---

१. ख़ून बरसाना, २. ज़हर टपकाना, ३.इन्द्रियाँ, ४.घबराहट के समय बोले जानेवाले शब्द, जैसे- बचाओ-बचाओ या त्राहि-त्राहि, ५.तपन, ६.बिना ज्ञान के शब्द, ७.मोज़िज़ा, ८.काव्य-मर्मज्ञता, ९.कला की समालोचना या समीक्षा करनेवाला, १०.दुख-दर्द का विश्लेषण करनेवाला, ११.दुनिया,

कोई बन्दिश, कोई तर्कीब पसन्द आती है।
चुस्त हो गर कोई मिस्रा तो नज़र जाती है।
या भला लगता है अंदाज़े-बयाँ, तर्ज़े-अदा,
या ख़ुश आते हैं किसी शायर के अल्फ़ाज़ हसीं।
हो इजाज़त तो मैं ये तल्ख़ हक़ीक़त कह दूँ।
लोग तस्वीर से मिलते हैं, मुसव्विर[१] से नहीं।

हर्फ़ो-मानी[२] के दरो-बाम सजाने के लिए।
हर नफ़स रोशनिए-तब्अ[३] बढ़ाने के लिए।
मुझको जी भर के जलाता है तफ़क्कुर[४] मेरा,
कभी तख़्ईल[५], कभी ख़्वाब बचाने के लिए।
लफ़्ज़ का बिस्तरे-कमख़्वाब[६] बचाने के लिए।
आप अपने को मैं शोलों पे बिछा देता हूँ।
अपने ही दामने-हस्ती को जला देता हूँ।
पैकरे-लफ़्ज़[७] में भरने के लिए रूहे-सुख़न[८],
शेर में गर्मिओ-तासीरो-असर की ख़ातिर।
कौन समझेगा कि एक मिस्रए-तर की ख़ातिर।
दिल कभी ख़ून उगलता है, कभी गलता है।
कभी एहसास, कभी तारे-नज़र जलता है।
लोग कहते हैं हुई शम्अ फ़रोज़ाँ लेकिन,
मोम के जिस्म में धागे का जिगर जलता है।

ग़मे-इंसाँ, ग़मे-जानाँ, ग़मे-दौराँ, ग़मे-दिल,
कोई भी ग़म हो वो लफ़्ज़ों में कहाँ होता है।
ग़म का तूफ़ान तो सीने में रवाँ होता है।
लफ़्ज़ में सोज़े-तमन्ना की हरारत न लपक।
लफ़्ज़ में ज़ख़्मे-दिलो-जाँ की न रंगत न महक।
लफ़्ज़ के बस में किसी ग़म का मुदावा[९] है न हल,
लफ़्ज़ बेगानए-एहसास हुआ करता है।
बुते-सीमीं[१०] की तरह, शोख़ सितमगर की तरह।
सिर्फ़ कानों पे बरस जाता है पत्थर की तरह।

१.चित्रकार, २.शब्द-अर्थ, ३.काव्य-प्रतिभा, ४.चिन्तन, ५.कल्पना-शक्ति, ६.कम सोनेवाला बिस्तर, ७.शब्द का शरीर, ८.साहित्य की आत्मा, ९.उपचार, १०.चाँदी जैसा बदन

हासिले–दीदए–पुरनम[१] को समझने के लिए।
मेरे एहसास, मेरे ग़म को समझने के लिए।
मुझसे मिलिए, मेरे अश्‌आर में क्या रक्खा है।
मैं बताऊँगा कि अल्फ़ाज़ के इस पर्दे में,
कितनी जाँसोज़ कराहों को दबा रक्खा है।
किस जगह कौन–सा नासूर छुपा रक्खा है।

१.अश्रुपूरित नेत्रों का हासिल,

इंसान की आवाज़

रचनावर्ष सन् 1950 ईस्वी

मैंने मर-मर के ये इल्म और फ़न पाले हैं।
मैंने फ़ौलाद को पिघला के क़लम ढाले हैं।
ज़ल्ज़ले मैंने सरे-फ़र्शे-ज़मीं ढाले हैं।
मेरी जुर्अत के गवाह अब भी जहाँवाले हैं।

बेझिझक हर सफ़रे-दार[१] किया है मैंने।
ज़ह्र का जाम भी हँस-हँस के पिया है मैंने।

हो कोई दौर यही एक चलन मिलता है।
ज़ीस्त[२] को तोह्फ़ए-सद रंजो-महन[३] मिलता है।
हक़परस्तों को ग़मे-तौक़ो-रसन[४] मिलता है।
ज़िन्दगी माँगनेवालों को कफ़न मिलता है।

बावजूद इसके किसी मोड़ पे मैं रुकता नहीं।
मेरा सर टूट तो जाता है मगर झुकता नहीं।

मौसमे-गुल जो कभी क़ैद हुआ हो तो डरूँ।
किसी तूफ़ाँ को कोई रोक सका हो तो रुकूँ।
गर्द उड़ाने से जो ख़ुर्शीद[५] छुपा हो तो छुपूँ।
ज़ह्र पीने से जो सुक़रात मरा हो तो मरूँ।

ज़ुल्म जिस रंग में भी चाहे उभर सकता है।
लेकिन इंसान न मरता है, न मर सकता है।

१. फ़ाँसी पर चढ़ना, २.जीवन, ३.हज़ारों दुख और तक्लीफ़ का तोहफ़ा, ४. क़ैद और ज़ंजीरों का ग़म, ५.सूरज,

ओस की बूँद जो पैमानाशिकन[१] हो तो कहो।
ज़ुल्मे-सर्सर[२] ही जो तारीख़े-चमन[३] हो तो कहो।
अबदी[४] मरहलए-दारो-रसन[५] हो तो कहो।
क़ैदख़ाना किसी युसुफ़ का वतन हो तो कहो।

ठोकरें खाता है इंसान सँभलने के लिए।
आदमी मरता है दुनिया को बदलने के लिए।

सच की आवाज़ दबाने से उभर जाती है।
बूए-गुल बन्द दरीचों से गुज़र जाती है।
ज़िन्दगी अपना लहू देके निखर जाती है।
मौत टकराती इंसाँ से तो मर जाती है।

जादए-हक़[६] में कोई मोड़, कोई फेर नहीं।
देर तो होती है लेकिन कोई अन्धेर नहीं।

मय उबलती है तो पैमानों में ढलने के लिए।
आँधियाँ चलती हैं मौसम को बदलने के लिए।
मौज दबती है जो कोई तो उछलने के लिए।
सुर्ख़ होता है जो लोहा तो पिघलने के लिए।

तीरगी[७] मुझको सियहपोश[८] नहीं कर सकती।
कोई ताक़त मुझे ख़ामोश नहीं कर सकती।

अय मेरी राह में दीवार उठानेवालो!
ऐ मेरे पैरों में ज़ंजीर पिन्हानेवालो[९]!
मुझको तारीकिए-ज़िन्दाँ[१०] में छुपानेवालो!
याद रक्खो मुझे सूली पे चढ़ानेवालो!

ख़ून से मेरे खिलेगा जो चमन, बोलेगा।
मै जो हो जाऊँगा चुप, मेरा कफ़न बोलेगा।

१.पैमाना तोड़नेवाला, २.गर्म और तेज़ हवाओं का ज़ुल्म, ३.चमन का इतिहास, ४.शाश्वत, नित्य, ५.फँासी और क़ैद की मंज़िल, ६.सत्य का मार्ग, ७.अँधेरा, ८.अंधकार द्वारा आच्छादित, ९.पहनानेवालो, १०. क़ैदख़ाने का अँधेरा,

अय बापू

रचनावर्ष सन् 1969 ईस्वी

मैं तेरे देश की मज़्लूम[१] ज़बाँ का शायर,
कहाँ पाऊँ कि जो सौग़ात तुझे नज़्र[२] करूँ।
या दिखावे की कोई बात तुझे नज़्र करूँ।

न मुफ़क्किर[३], न मुक़र्रिर[४] हूँ, न रहबर हूँ कि मैं,
कुछ मज़ामीनो-मक़ालात[५] तुझे नज़्र करूँ।
या तक़ारीरो-बयानात[६] तुझे नज़्र करूँ।

फिर भी गर तेरी इजाज़त हो तो मैं अय बापू!
सिर्फ़ मुब्हम[७] से इशारात[८] तुझे नज़्र करूँ।
यानी बेरह्मिए-हालात तुझे नज़्र करूँ।

गोलियाँ तुझ पे चलायी गयीं जिन हाथों से,
उन्हीं हाथों की करामात तुझे नज़्र करूँ।
और वही ख़ूनी हिकायात[९] तुझे नज़्र करूँ।

१.जिस पर ज़ुल्म हुआ हो, २.तोहफ़ा या उपहार पेश करना, ३.विचारक, ४.भाषण देने वाला, वक्ता, ५.लेख, निबन्ध इत्यादि, ६.भाषण और वक्तव्य, ७. छुपे हुए, गुप्त रूप से, ८.संकेत, इशारे, ९.कहानियाँ, वृत्तान्त,

कुछ बयाँ तुझसे करूँ तेरे परस्तारों[१] का,
चन्द पुरहौल[२] फ़सादात तुझे नज़्र करूँ।
अहमदाबाद के हालात तुझे नज़्र करूँ।

और फिर तुझसे मैं ये अर्ज़ करूँ अय बापू!
तू समझता है कि इस देश में मक़्बूल[३] है तू।
गोडसे कहता है मुद्दत हुई माज़ूल[४] है तू।

१.पूजक, भक्त, २.भययुक्त, ख़ौफ़ज़दा, ३.स्वीकार, स्वीकृत, ४.पदच्युत, जो अपने स्तर या पद से नीचे कर दिया गया हो,

हम में कोई इंसान नहीं

(उसके ग़म में जिसने बक़ाए-इंसानियत की ख़ातिर अपनी जान दी।)*

रचनावर्ष सन् 1948 ईस्वी

आदमीयत हुई ग़मगीनो-हज़ीं[१] मेरे नदीम[२]!
तुन्द[३] झोंकों से बुझा अज़्मते-आदम[४] का चराग़,
हो गये मुल्क में पुरहौल[५] अँधेरे बरपा।
रूह इंसाँ की भटकती है जनाज़ा बरदोश[६],
एक-इक गाम[७] पे चंगेज़ के डेरे बरपा।
अर्क़आलूद[८] है यज़्दाँ[९] की जबीं[१०] मेरे नदीम!

कृष्न के नग़्मों की लय टूट गयी दिल्ली में,
हिन्द की अज़्मते-देरीना[११] हुई गिरियाकुनाँ[१२]।
और अहिंसा की घनी चाँदनी रूपोश[१३] हुई,
आज अजन्ता की फ़ज़ाएँ हुई हैं अश्कफ़िशाँ[१४]।
सिसकियाँ लेती है गोकुल की ज़मीं मेरे नदीम!

क्यूँ ज़मींबोस[१५] है इख़्लासो-सदाक़त[१६] का सुतून[१७],
हिन्द में और भी शोहरत के तलबगार तो हैं।
सूना-सूना सा है क्यूँ अज़्मते-आदम[१८] का महल,
धर्म, मज़हब के ख़ुदावंदे-सियहकार[१९] तो हैं।
कौन उट्ठा कि ये महफ़िल है ग़मीं मेरे नदीम!

---

*इंसानियत की हिफ़ाज़त, १.दुखित, पीड़ित, २.सखा, मित्र, ३.तेज़, तीव्र, ४.मानव-जाति की उच्चता, ५.भयमुक्त, ६.काँधे पर जनाज़ा उठाये, ७. क़दम, पग, ८.पसीने से युक्त, ९.ईश्वर, १०.माथा, ११.प्राचीन वैभव, पुरातन श्रेष्ठता, १२.रोता हुआ, आँसू बहाता हुआ, १३.छुप जाना, १४.आँसू बहानेवाली, १५. ज़मीन चूम लेना अर्थात् जमीन पर गिर जाना, १६.निष्कपट प्रेम और सच्चाई, १७.स्तम्भ, १८.मानव-जाति की श्रेष्ठता, १९.ऐसे पापी या गुनहगार जिनको ख़ुदा की ओर से विशेष मर्तबा हासिल हो (व्यंग्यभाव से),

हाथ से छूट गयी अम्नो-अमाँ[१] की मश्अल,
हिन्द के चर्ख़[२] से ताबिन्दा सितारा टूटा।
अपनी महफ़िल का दिया अपनी ही फूँकों से बुझा,
अपने ही हाथों से अपना ही सहारा टूटा।
कितने बदबख़्त[३] हैं इस घर के मकीं[४] मेरे नदीम!

ख़ाके-दिल्ली को ज़रा चश्मे-हक़ीक़त[५] से तो देख,
ज़िन्दगी के लिए मेराज[६] यहीं है अय दोस्त!
जिस जगह बहता है दुनिया में शहीदों का लहू,
वो जगह अस्ल में फ़िर्दौसे-बरीं[७] है अय दोस्त!
कमनज़र कह लें उसे सिर्फ़ ज़मीं मेरे नदीम!

जान दे सकता हो जो हक़्क़ो-सदाक़त[८] के लिए,
मौत उसकी है हयाते-अबदी[९] की तम्हीद[१०]।
ज़िन्दगी दे के नयी ज़िन्दगी पा लेता है,
वतनो-मुल्क पे हो जाय जो इंसान शहीद।
मौत उस मर्द को पा सकती नहीं मेरे नदीम!

गोलियाँ और चलें, और हो आफ़त बरपा।
ये शहीदे-वतनो-क़ौम[११] नहीं मर सकता।

१.शान्ति, सुकून, २.आकाश, आस्मान, ३.बदक़िस्मत, अभागा, ४.मकान में रहनेवाला, ५.सत्य की दृष्टि, यथार्थ दृष्टिकोण, ६.उच्च पद, बुलन्द मर्तबा, वो रुतबा या दर्जा जिससे ज़ियादा की कल्पना न की जा सके, ७.सबसे ऊँचा स्वर्ग, ८.सत्यता और यथार्थता, ९.शाश्वत जीवन, १०. भूमिका, प्रारम्भ, ११. वतन और क़ौम पर शहीद होनेवाले,

अबुल कलाम आज़ाद

रचनावर्ष सन् 1958 ईस्वी

यक़ीनो-जुहदे-मुसल्सल[१] के शाहकारे-अज़ीम[२],
इक अज़्मे-फ़त्ह बर आलाम[३] थी नज़र तेरी।
ख़ुशा[४] कि ढूँढ़ती-फिरती थी कामरानी[५] तुझे,
ज़हे[६] कि इश्रते-मंज़िल[७] थी रहगुज़र तेरी।

हज़ार शोरिशे-तूफ़ाँ[८] से भी उजड़ न सके,
बिसाते-इल्मो-अदब यूँ सजा गया है तू।
कोई नज़र नहीं उठती अब आस्माँ की तरफ़,
कि इस ज़मीं पे सितारे बिछा गया है तू।

तेरी बहारे-नज़र काम कर गयी अपना,
कि दिल के दाग़ महकते हुए गुलाब बने।
यही घिसे हुए नुक़्ते[९], यही पिटे अल्फ़ाज़,
तेरी क़लम से जो निकले तो आफ़्ताब बने।

तेरा यक़ीने-अमल[१०] इस क़दर बुलन्द हुआ,
मचल-मचल गयीं अँगड़ाइयाँ ख़यालों में।
तेरे ख़ुलूसे-वफ़ा की करिश्मासाज़ी से,
बिखर-बिखर गयीं रानाइयाँ[११] फ़ज़ाओं में।

१.अनवरत या निरन्तर विश्वास और भरोसा, २.श्रेष्ठतम कृति, श्रेष्ठतम उदाहरण, ३.हर प्रकार की मुसीबतों पर विजय प्राप्त करना, ४.अहो, क्या ख़ूब, ५.कामयाबी, ६.वाह, तारीफ़ के शब्दों के साथ विशेष रूप से प्रयुक्त, ७.मंज़िल का आनन्द, मंज़िल की ख़ुशी, ८.तूफ़ान का विप्लव या उपद्रव, ९.बिन्दु, १०.कर्म पर विश्वास करना, ११.सुन्दरताएँ, सौन्दर्य,

जहाने-फ़ैज़[१] की तारीकियाँ[२] मिटाता हुआ,
तेरा वुजूद[३] बअन्दाज़े-मेह्रो-मह[४] आया।
ये वाक़िआ[५] है कि हर दास्ताने-इल्मो-अदब,
चमक उठा है तेरा नाम जिस जगह आया।

कुछ इस तरह से तेरा नुत्क़[६] शोलाबार हुआ,
कि तुझ पे जाने-ख़िताबत[७] निसार हो के रही।
ख़िज़ाँ[८] से कम किसी सूरत न थी इमामते-क़ौम[९],
तेरे हुज़ूर जो पहुँची बहार हो के रही।

रुका तो गर्दिशे-दौराँ[१०] भी रुक गयी तेरे साथ,
चला तो रोशनिए-इन्क़िलाब ले के चला।
लबों पे मौजे-तबस्सुम नज़र में शम्अए-करम,
अदूए-जाँ[११] के लिए ये जवाब ले के चला।

कोई भी दौर हो तारीख़े-ज़िन्दगी[१२] है यही,
कि हुस्ने-मोतबरो-ताज़ादम नहीं मिटता।
ज़मीं का नक़्श तो मिटता है दौरे-वक़्त के साथ,
जो हो दिलों पे वो नक़्शे-क़दम नहीं मिटता।

मुझे ख़बर है अजल[१३] तुझको छू नहीं सकती,
मेरा यक़ीन है ये रूकशे-ममात[१४] है तू।
न इल्मो-फ़न के लिए मौत है, न तुझको फ़ना[१५],
सदाबहार है दुनिया, सदाहयात[१६] है तू।

१.कीर्ति-संसार, प्रसिद्धि का जहान, २.अँधेरा, ३.व्यक्तित्व, ४.चाँद-सितारों के अंदाज़ में, ५.वृत्तान्त, ६.वाणी, वाक्शक्ति, ७.भाषण-कला की जान, ८.पतझड़, उजड़ी हुई, ९. क़ौम का नेतृत्व, १०.समय-चक्र, ११.जान के दुश्मन, १२.जीवन का इतिहास, जीवन का विकास-क्रम, १३.मृत्यु, १४.मृत्यु का प्रतिद्वन्द्वी, १५. मिट जाना, १६.जो सदैव जीवित रहे,

गुरुनानक

(पाँच सौवीं वर्षगाँठ के अवसर पर)

रचनावर्ष सन् 1969 ईस्वी

बड़े ख़ुलूस[१] से हाज़िर हुआ हूँ, ख़िदमत में,
बसद[२] नियाज़ो-अक़ीदत[३] कलाम करता हूँ।
नसीब जाग उठे गर क़ुबूल हो जाये,
मैं इस जगत के गुरू को सलाम करता हूँ।

किसे नसीब हुआ ऐसे सख़ी[४] का मयख़ाना।
बक़द्रे-ज़र्फ़[५] मिला हर किसी को पैमाना।
जो उसके दर पे गया दामन अपना भर लाया,
किसी को 'बाला'* बनाया किसी को 'मरदाना'*।

गुरू की बानी है तस्कीने-ज़िन्दगी[६] सबकी।
सुनो जो बात वो भगवान की है या रब की।
हैं बदनसीब कि हम लोग हो गये बहरे,
ज़बान अब भी खुली है गरन्थ-साहब[७] की।

१. निश्छलता, निष्कपटता, २.हज़ार, ३.श्रद्धा और आस्था, ४.दानी, ५.पात्रता के आधार पर, * गुरुनानक के प्रिय शिष्य, ६.जीवन की संतुष्टि, ७.ग्रन्थ-साहब,

न छुप सकेगा खरा हो कोई कि हो खोटा,
हो सच कि झूठ, तराज़ू में अपनी बात तोलेगा।
न चल सकेगा यहाँ कोई भी फ़रेब कभी,
गुरू रहेगा अगर चुप, गरन्थ बोलेगा।

माना हमारे सीनों में जज़्बा नहीं रहा,
लेकिन ये जश्न देखनेवाला तो हो गया।
कुछ देर इसकी याद में मश्ग़ूल तो हुए,
कुछ देर ज़ुल्मतों[१] में उजाला तो हो गया।

१.अँधेरा,

क़ाफ़िलेवालों के नाम

रचनावर्ष सन् 1964 ईस्वी

वो दर्द उट्ठा है कि बेचैनो-बेक़रार हो तुम।
वो चोट दिल पे लगी है कि अश्कबार[१] हो तुम।
मैं जानता हूँ कि हद दर्जा दिलफ़िगार[२] हो तुम।
मुझे ख़बर है कि नेहरू के सोगवार[३] हो तुम।
सँभाले बढ़ के तुम्हें इतनी ताब[४] है किसमें।
ये दर्द वो है कि दुनिया शरीक है जिसमें।

मगर मैं तुमसे मुख़ातिब हूँ मेरे हमवतनो!
नज़र बुलन्द, जवाँ अपना हौसला रक्खो।
ममाते-नेहरू[५] वो बरहक़[६] मगर न ये भूलो।
कि मौत आती है उसको जो महज़ इंसाँ हो।
वो इक यक़ीं था जो यूँ ही गुज़र नहीं सकता।
वो एक अज़्म[७] था और अज़्म मर नहीं सकता।

वो इक शुऊरे-मुसल्सल[८], जुनूने-पैहम[९] था।
वो इक हरारते-तर एक शोलए-नम था।
वो जद्दोजहदे-मुजस्सम बनामे-आदम[१०] था।
वो कोई फ़र्द[११] न था, एक पूरा आलम था।
नज़र डरे तो डरे, रोशनी नहीं डरती।
बशर[१२] मरे तो मरे, ज़िन्दगी नहीं मरती।

१.आँसू बहाने वाला, २.जिसका दिल टूटा है, ३.शोकग्रस्त (नेहरू के लिए), ४.शक्ति, ५.नेहरू की मृत्यु, ६.सत्य-संगत, ७.श्रेष्ठ, पुनीत, ८.सतत् होश या विवेक, ९.सतत् उन्माद या जुनून, १०.मानव-जीवन के संघर्ष का साक्षात् स्वरूप, ११.एक व्यक्ति, १२. आदमी,

वो इक सलीक़ए-हस्ती[१], शुऊरे-उल्फ़त था।
वो दर्से-अम्न था, पैग़ामे-आदमीयत था।
हमारी 'फ़िक्रो-नज़र' था, हमारी अज़्मत था।
वो इक बशर तो नहीं था, वक़ारे-भारत[२] था।
हर इक ज़माने में वो अंजुमन[३] सजायेगा।
वो मुस्कुराता रहा है, वो मुस्कुरायेगा।

ये किसके जल्वों से हर सिम्त[४] जगमगाहट है।
ये किसके ख़ूने-जिगर से यहाँ सजावट है।
लबे-हयात[५] पे ये किसकी मुस्कुराहट है।
सुनो, क़रीबे-रगे-जाँ[६] ये किसकी आहट है।
क़दम-क़दम पे ये नेहरू नहीं तो फिर क्या है।
उसी गुलाब की ख़ुश्बू नहीं तो फिर क्या है।

ये शाख़-शाख़ में सदहा[७] नयी-नयी कोंपल।
ये मोड़-मोड़ पे तह्ज़ीबे-ज़ीस्त[८] के आँचल।
ये हुस्नो-जल्वए-रेहन्द-ओ-भाखड़ा नंगल।
कमाले-मेह्नते-जम्हूर[९] के ये ताजमहल।
ज़बाने-हाल से हर चीज़ कह रही है सुनो।
हमारे होते हुए नेहरू को तुम मरा न कहो।

ये कौन है चितरंजन के इंजनों में निहाँ।
ट्राम्बे की फ़ज़ा में है कौन जल्वाफ़िशाँ।
ये दुर्गापूरो-भिलाई में कौन है ख़न्दाँ[१०]।
ये रगे-तरक़्क़िओ-तामीर[११] में है कौन रवाँ[१२]।
चमन में जितने भी हैं रंग, जितनी ख़ुश्बू है।
किसी से पूछ लो, हर शय का नाम नेहरू है।

१.जीवन का सलीक़ा, २.भारत की शोभा, ३.सभा, ४.दिशा, ओर, ५.जीवन के होंठ, ६.प्राणेन्द्रिय के क़रीब, ७.हज़ारों, ८.जीवन-संस्कृति, ९.गणतन्त्र की मेह्नत का कमाल, १०.हँसता हुआ, ११.विकास और निर्माण, १२.गतिशील,

ये लहलहाता चमन प्यार का, मुहब्बत का।
ये तोह्फा क़ौम को जम्हूरियत[१] की दौलत का।
ये बज़्मे-दह्र[२] में अपना मक़ाम इज़्ज़त का।
क़यामे-हिन्द में नामज़हबी हुकूमत का।
ये कुछ नहीं है उसी के नफ़स का जादू है।
ये हम नहीं हैं, सुबूते-हयाते-नेहरू है।

मैए-ख़ुलूसो-मुहब्बत का जाम है नेहरू।
बक़ाए-अम्नो-अमाँ[३] का पयाम[४] है नेहरू।
हमारे अज़्मो-अमल का सलाम है नेहरू।
हमारी अज़्मते-ख़ातिर[५] का नाम है नेहरू।
हयात ज़िन्दा है, हुस्ने-हयात ज़िन्दा है।
जो हम हैं ज़िन्दा तो नेहरू की ज़ात[६] ज़िन्दा है।

१.लोकतंत्र, २. दुनिया की महफ़िल, ३.शान्ति-सद्भाव की रक्षा, ४.सन्देश, ५.मान-सम्मान की श्रेष्ठता, ६.अस्तित्व, व्यक्तित्व,

वतन को सलाम

रचनावर्ष सन् 1943 ईस्वी

क़ैद की सख़्तियों से छुड़ायेंगे हम।
तेरे दीवारो-दर को सजायेंगे हम।
ख़ून से अपने दीपक जलायेंगे हम।
एक-इक ज़र्रे को जगमगायेंगे हम।
अस्सलाम अय ज़मीनो-मकाने-वतन[१]।
आस्माने-वतन, अय जहाने-वतन।

सारे जग से हैं ऊँची तेरी चोटियाँ।
तेरे दामन में रक्साँ[२] मधुर नद्दियाँ।
गुनगुनाती हैं तुझमें हसीं वादियाँ।
तुझको धरती का तारा बनायेंगे हम।
अस्सलाम अय ज़मीनो-मकाने-वतन।
आस्माने-वतन, अय जहाने-वतन।

तुझमें हैं रन के रसिया हठीले जवाँ।
तेरी आग़ोश में हैं सजीले जवाँ।
सो रहे हैं अभी जो कटीले जवाँ।
ख़्वाबे-ग़फ़्लत[३] से उनको जगायेंगे हम।
अस्सलाम अय ज़मीनो-मकाने-वतन।
आस्माने-वतन, अय जहाने-वतन।

१. मातृभूमि, २.नृत्यरत, ३.गहरी नींद,

तोड़कर फेंक देंगे सभी[१] सूलियाँ।
नोच लेंगे तेरे जिस्म से रस्सियाँ।
काट देंगे तेरे पाँव की बेड़ियाँ।
तेरे माथे पे चन्दन लगायेंगे हम।
अस्सलाम अय ज़मीनो-मकाने-वतन।
आस्माने-वतन, अय जहाने-वतन।

तख़्लीक़े-ग़ज़ल[१]

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

अजब है कारगहे-ज़ेहन[१] का ये आलम भी,
यक़ीने-शाम है बाक़ी, न एतिमादे-सहर[२]।
न कोई दश्त[३] ही नज़्दीक है न अपना घर।
हरेक चेह्रे के पीछे हज़ारहा चेह्रे,
करें तो कैसे करें आख़िर एतबारे-नज़र।
न जल रही है, न बुझती है शम्अए-राहगुज़र।
न दूसरों पे नज़र है न अपने दिल की ख़बर।

ये क्या मक़ामे-जुनूँ है कि जिस जगह आकर,
तसल्सुले-ग़मे-जानाँ[४] लरज़ के टूट गया।
हयात[५] पर ग़मे-दौराँ का भी असर न रहा।
सितम ये है कि ग़मे-दिल भी मोतबर[६] न रहा।
न इब्तिदाअ[७] हरकत की न इन्तिहाए-जमूद[८]।
कहीं तसव्वुरे-फ़र्दा[९], न कोई हस्त[१०], न बूद[११]।
ग़मे-ज़मानो-मकाँ[१२] वज्हे-सरगिरानी[१३] है।
उफ़ुक़[१४] से ता बउफ़ुक़ एक बेकरानी[१५] है।

१.बुद्धि का कार्य-व्यापार, २.सुबह का यक़ीन, ३.जंगल, ४.प्रिय के दुख का क्रम या सिल्सिला, ५.जीवन, ६.विश्वस्त, जिसका विश्वास हो, ७.प्रारम्भ, ८.स्थायित्व की सीमा, ठहर जाने की सीमा, ९.आनेवाले कल का ख़्वाब, १०.उपस्थिति, मौजूदगी, ११.अस्तित्व, १२.सांसारिक-पारिवारिक दुख, १३.अप्रसन्नता का कारण, १४.क्षितिज, १५.असीम, निस्सीमिता,

जो आर्ज़ू है ग़ुनूदा[१] तो मुंजमिद[२] है चिराग़,
नज़र के पाँव में परछाइयों की ज़ंजीरें।
पढ़ें तो कैसे पढ़ें लौहे-दिल[३] की तह्रीरें[४]।
कि हर्फ़-हर्फ़ हैं वाज़े[५] भी और मुब्हम[६] भी।
अजब है कारगहे-ज़ेह्न का ये आलम भी।

कभी ये चाहें कि बेनाम भीड़ में खो जायँ।
शिकस्त को ही गले से लगायें और सो जायँ।
कभी ये चाहें कि हर तरह सुर्ख़रू हो जायँ।
सलीब[७] उठाये हुए शह्रे-ज़िन्दगानी को जायँ।
जो कुछ नहीं है तो रस्ते में नूर ही बो जायँ।
बढ़ायें बात कि आख़िर कोई तो बात बने।
जलायें ख़ून कि अफ़सानए-हयात बने।
अजब है कारगहे-ज़ेह्न का ये आलम भी।
कि अपनी ज़ात[८] में जन्नत भी है जहन्नम भी।

मुशाहिदे[९] जो कई पैकरों[१०] में ढलते हैं।
वो तज्रुबे जो नयी सूरतें बदलते हैं।
वो लम्हे, छू के जो एहसास को गुज़रते हैं।
वो अपने आप हुए जा रहे हैं ताजमहल,
ख़याल ढूँढ़ते हैं लफ़्ज़ो-बयाँ का पैराहन[११]।
कहीं सँवर न रही हो कोई उरूसे-सुख़न[१२]।
कहीं निखर न रहा हो कोई निगारे-ग़ज़ल[१३]।
कि शोला भी उफ़ुक़े-फ़िक्र[१४] पर है, शबनम भी।
अजब है कारगहे-ज़ेह्न का ये आलम भी।

१.जिसकी आँखों में नींद भरी हो, उन्निद्र, तन्द्रालु, २.जम जाना, ३.हृदय-पटल, ४.लिखावट, ५.स्पष्ट, ६.गुप्त या छिपा हुआ, अस्पष्ट, ७.ईसा मसीह को सूली देने की टिकठी जो चौपारे के आकार की थी, ८.व्यक्तिव या अस्तित्व, ९.अनुभव, १०.रूप-स्वरूप, ११.आवरण, वस्त्र, १२.साहित्यरूपी दुल्हन, १३. ग़ज़ल का रूप-स्वरूप, १४.चिन्तन-क्षितिज,

मेरी ग़ज़ल

रचनावर्ष सन् 1960 ईस्वी

बीते लम्हे पिघल रहे हैं, अय दोस्त!
सदमे सूरत बदल रहे हैं, अय दोस्त!
मेरे शहरे-ग़ज़ल के हर कूचे में,
ज़ख़्मों के चराग़ जल रहे हैं, अय दोस्त!

हर यूरिशे-आफ़ात बदल दे के गयी।
रात आयी तो ज़ख़्मों के कँवल दे के गयी।
माहौल के अँधियारे ने बख़्शी कोई नज़्म,
बेरह्मिए-हयात ग़ज़ल दे के गयी

ग़ज़लें

सिन्फ़े-ग़ज़ल के नाम

इस भरी दुनिया में तन्हा ग़ज़ल है जिससे मैं खुलकर
अपने दिल की बात कह लेता हूँ
और
जो मेरे सारे दुख-दर्द को अपने दामन में समेटकर
मेरे सीने का बोझ हल्का कर दिया करती है

नाज़िश प्रतापगढ़ी
('ख़ाके और लकीरें' पृष्ठ-23)

जिन पर तेरी निगाहे-तवज्जो ठहर गयी,
उन आँसुओं को ताजमहल लिख रहा हूँ मैं।

रचनावर्ष सन् 1982 ईस्वी

घर में रहूँ तो घेर के तन्हाइयाँ डसें।
निकलूँ जो शह्र में तो शनासाइयाँ[१] डसें।

ठहरूँ तो ज़िन्दगी की तवानाइयाँ[२] डसें।
आगे बढ़ूँ तो हाशिया-आराइयाँ[३] डसें।

मैं चुप रहूँ तो अपनी नज़र से गिरा रहूँ,
खोलूँ ज़बाँ तो दौड़के सच्चाइयाँ डसें।

नज़रों को चीथड़ों की गुज़रगाहें[४] काट खायँ,
एहसास को मकानों की ऊँचाइयाँ डसें।

सड़कों पे उठते क़दमों को ख़ंजर करे शिकार,
आँगन में फैली धूप को परछाइयाँ डसें।

डालूँ जो इक निगाह भी मैं अपने गिर्दो-पेश[५],
मुझको मेरे ही ख़्वाबों की रानाइयाँ[६] डसें।

मंसूर[७] हम नहीं कि अनलहक़[८] पे जान दें,
हमको हमारे अहद[९] की सच्चाइयाँ डसें।

१.परिचय, २.शक्ति, बल, ३.अतिशयोक्तिपूर्ण बातें, ४.मार्ग, रास्ता, ५.आसपास, ६.सुन्दरता, ७.एक वली जिन्होने 'अनलहक़' कहा था और इसे अपराध मानकर उनकी गर्दन काट ली गयी थी, ८.अहं ब्रह्मास्मि, मैं ख़ुदा हूँ, ९.युग,

हम अपने दिल की चोटों को ख़ुद ही उभार लें,
अब दौर वो नहीं है कि पुरवाइयाँ डसें।

हम लोग आफ़्ताबे-लबे-बाम हो गये,
आयें हमें हमारी ही परछाइयाँ डसें।

मेरे सुजूदे-शौक़[१] से क़ायम हैं रौनक़ें,
वर्ना इस आस्ताने[२] को तन्हाइयाँ डसें।

'नाज़िश' ये दौर कब था किसी के ख़याल में,
इंसान को ख़ुद उसकी ही अच्छाइयाँ डसें।

१.शौक़ के सज्दे, २.चौखट, दहलीज़, किसी वली का मज़ार,

रचनावर्ष सन् 1981 ईस्वी

जब न शोहरत का तमाशा था मेरे नाम के साथ।
मैंने वो वक़्त गुज़ारा बड़े आराम के साथ।

अपने ज़ख़्मों को गिनूँ मैं कि लगाऊँ ये हिसाब,
दोस्त कितने हैं जो बदले सहरो-शाम[१] के साथ।

दोस्तो! मुझपे ये बेगानावशी[२] का पत्थर,
फेंकना था किसी तोह्मत, किसी इल्ज़ाम के साथ।

जुर्म मेरा है कि मैं जम के वतन में बैठा,
दर बदर क्यों न फिरा गर्दिशे-अय्याम[३] के साथ।

सुनते आये थे हुनरमन्द सितमपेशा लोग,
प्यार थोड़ा-सा मिला देते हैं दुश्नाम[४] के साथ।

मेरे अश्आर[५] का होगा न ख़रीदार कोई,
सानेहा[६] ये भी लिखा था मेरे अंजाम के साथ।

१.सुब्ह-शाम, २.बेगानों की भाँति रहना, ३.कालचक्र, ४.अपशब्द, गाली, ५.शेर का बहुवचन, ६.दुर्घटना,

शह्रवालों से तो है शह्र की मिट्टी अच्छी,
कम-से-कम लिपटी तो रहती है मेरे नाम के साथ।

मुझको बदमस्तिए-रिन्दाँ[१] ने किया तल्ख़कलाम[२],
मैं तो वर्ना था मगन अपने तिहीजाम[३] के साथ।

'नाज़िश' उस शह्र में मेरी कोई वक़्अत[४] ही नहीं,
जिसको जाना गया दुनिया में मेरे नाम के साथ।

१.वे शराबी जो नशे के कारण बहुत अधिक बहक गये हों, मदोन्मत्त, २.तल्ख़ बातचीत,
३. ख़ाली जाम, ४.प्रतिष्ठा, आदर,

रचनावर्ष सन् 1977 ईस्वी

हयात, जुर्म न कोई सज़ा लगे है मुझे।
शिकस्ते-ख़्वाब का इक सिल्सिला लगे है मुझे।

मैं अपने घर का पता किससे पूछने जाऊँ,
कि मेरा शह्र ही खोया हुआ लगे है मुझे।

न दोस्ती का सलीक़ा न दुश्मनी का शुऊर,
ये दौर सब के लिए बद्दुआ लगे है मुझे।

सवाल ये है कि अब कैसे दिल को बहलाऊँ,
हरेक ख़्वाब तो देखा हुआ लगे है मुझे।

क़दम-क़दम पे हसीनों का ख़ून माँगे है,
सियासत आज की कर्बो-बला[१] लगे है मुझे।

बिखर-बिखर के भी जीता है, मुस्कुराता है,
ये आदमी तो कोई मोजिज़ा[२] लगे है मुझे।

अजीब ज़ेह्न का आलम हुआ है बरसों से,
कोई हँसे भी तो इक ख़ौफ़-सा लगे है मुझे।

१.यातना, आपदा, २.चमत्कार,

बदल गयी हैं कुछ इतनी हयात की क़दरें,
कि लम्हा-लम्हा सदी से बड़ा लगे है मुझे।

ख़िरद[१] में मस्लेहतअंगेज़ियाँ[२] बहुत हैं मगर,
जुनूँ तो और भी कमहौसला लगे है मुझे।

शिगुफ़्ता[३] ग़ुंचा[४] के आदाबे-कर्ब[५] में अक्सर,
मेरी ग़ज़ल ही के अंदाज़-सा लगे है मुझे।

बला है मेरे लिए अस्री[६] आगही[७] 'नाज़िश',
ग़ज़ल सुनूँ भी तो वो मर्सिया लगे है मुझे।

१.बुद्धि, बल, २.अपने बनाव या बिगाड़ का ध्यान रखते हुए कोई काम करना, ३.खिली हुई, विकसित, ४.कलियाँ, ५.व्याकुलता की स्थिति, ६.क्षण, काल, ७.जान-पहचान, सूचना, ज्ञान,

रचनावर्ष सन् 1977 ईस्वी

ये सियासत की अदा है सानेहा[१] कोई नहीं।
सबके मुँह में हैं ज़बानें बोलता कोई नहीं।

यूँ तो इस दुनिया में औरों से जुदा कोई नहीं।
ख़ैरियत औरों की लेकिन पूछता कोई नहीं।

सो गये सब लोग चादर मस्लेहत[२] की तानकर,
अब मेरी बस्ती में दरवाज़ा खुला कोई नहीं।

इक न इक अन्धे कुएँ पर हर गली का इख़्तिताम[३],
घर की जानिब[४] लौटने का रास्ता कोई नहीं।

तख़्त भी है, ताज भी, ज़िन्दाँ[५] भी है और दार[६] भी,
इन दिनों मख़्सूस[७] जीने की अदा कोई नहीं।

है शफ़क़[८] भी, शोला भी है और मेरा ख़ून भी,
मुस्तक़िल[९] इस शोख़ का रंगे-हिना कोई नहीं।

१.दुर्घटना, २.स्वार्थ, ३.समाप्ति, ४.की ओर, ५. क़ैद, ६.फाँसी, ७.विशेष, ८.सवेरे या शाम की लालिमा जो क्षितिज पर दिखायी देती है, ९.स्थायी,

ये उछलते क़हक़हे क्या जाने किसकी देन हैं,
मेरी बस्ती में तो मुद्दत से हँसा कोई नहीं।

ये कहाँ लाया मुझे एहसास का अन्धा सफ़र,
इस जगह ज़िन्दा तो सब हैं सोचता कोई नहीं।

जाने कैसा सिह्र[१] कर देते हैं बेदारी[२] के ख़्वाब,
लाख हंगामा हो आँखें खोलता कोई नहीं।

दीदनी[३] है इन दिनों इंसान की बेचारगी,
आर्ज़ूएँ हैं हज़ारों आसरा कोई नहीं।

'नाज़िश' इक 'इंसान'* से मिलने हम आते हैं यहाँ,
वर्ना दिल्ली से हमारा वास्ता कोई नहीं।

---

१. जादू टोटका या टोना, २.जाग्रत अवस्था, खुली आँख के सपने, ३.देखने योग्य,
* जनाब ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ'

रचनावर्ष सन् 1979 ईस्वी

लबों से जाम तलक .फ़ासला बढ़ा देगी।
मेरी हयात[१] भला मुझको और क्या देगी।

चलो कि दिल ही जलायें रहे-तमन्ना में,
चराग़ जो भी जलेगा हवा बुझा देगी।

इधर हैं ख़ार[२] उधर राहज़न[३] का ख़तरा है,
ये एहतियात तो रस्ता बहुत बढ़ा देगी।

तेरे तग़ाफ़ुले-बेजा[४] का है जवाब मगर,
तेरी शिकस्त मेरा हौसला दबा देगी।

ग़ज़ल से बन न पड़ा और कुछ तो अय 'नाज़िश' !
कभी मुझे मेरी आवाज़ ही सुना देगी।

१.जीवन, २.काँटे, ३.राह में लूटनेवाले, ४.अनुचित उपेक्षा,

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

हर मक़्तले-हयात[१] से हँसकर गुज़र गये।
लेकिन हम अपने शह्र की दह्शत से मर गये।

ये सानिहे[२] भी शिद्दते-ग़म में गुज़र गये।
अल्फ़ाज़ मेरे होंठों तक आते ही मर गये।

हाँ अय हयात! और कोई इम्तिहाँ कि हम,
तन्हाइयों का ज़ह्र तो बर्दाश्त कर गये।

सड़कों के इज़्दिहाम[३] से भागे थे यार लोग,
गलियों में अपनी ज़ात के साये से डर गये।

था वो हुजूमे-दर्द कि आगे न बढ़ सके,
हम अपने घर के पास पहुँचकर ठहर गये।

हमसे ग़मे-हयात भुलाया न जा सके,
सहरा में अपने साथ लिये अपना घर गये।

१.ज़िन्दगी की क़त्लगाह, जीवन-वधस्थली, २.घटनाएँ, ३.भीड़,

फ़ुर्सत किसे थी इतनी कि पहचानता हमें,
हम सर झुकाये अपनी गली से गुज़र गये।

पूछे है मेरे चेह्‌रए-फ़न की शिगुफ़्तगी[१],
मुझ पर जो चल रहे थे वो पत्थर किधर गये।

'नाज़िश' नहीं किसी को ख़ुद अपनी ख़बर यहाँ,
फिर किससे पूछिये कि भला हम किधर गये।

१.उत्फुल्लता, प्रसन्नता,

रचनावर्ष सन् 1979 ईस्वी

ये हादिसे रोने न रुलाने के लिए हैं।
सोया हुआ एहसास जगाने के लिए हैं।

क्या कीजिए कि इस दौर में आँधी के अलावा,
कुछ आहें भी शम्ओं को बुझाने के लिए हैं।

रूदादे-अलम[१] कहने को बेताब हैं कुछ लोग,
कुछ मुंतज़िर[२] अफ़्साना बनाने के लिए हैं।

अय क़ाफ़िलए-ज़ीस्त[३] न हो हम से गुरेज़ाँ[४],
हम लोग तो मश्अल[५] हैं, जलाने के लिए हैं।

१.दुख-दर्द का वृत्तान्त, २.प्रतीक्षारत, ३.ज़िन्दगी का क़ाफ़िला, ४.भागकर जाता हुआ, बचकर निकल जानेवाला, ५.मशाल,

रचनावर्ष सन् 1979 ईस्वी

मैंने हर्गिज़ न कभी उनको उठाकर फेंके।
काग़ज़ी फूल भी यारों ने जो मुझ पर फेंके।

अब भी वो आग बदस्तूर है जिस पर हमने,
ख़ून के बहते हुए लाखों समन्दर फेंके।

शह्र में पूछता फिरता है कोई दीवाना,
क्या हुआ बच्चों ने क्यूँ हाथों से पत्थर फेंके।

मैं किसी झील के पानी की तरह साकित[१] हूँ,
'नाज़िश' इतना भी नहीं कोई जो कंकर फेंके।

१.शान्त, निश्चल,

रचनावर्ष सन् 1977 ईस्वी

किसी भी जिस्म पर चेह्रा नहीं है।
मेरी बस्ती में वर्ना क्या नहीं है।

ये माना आइना झूठा नहीं है।
मगर ये तो मेरा चेह्रा नहीं है।

तुम्हीं रुक जाओ अय आवारा लम्हे!
मेरे घर में कोई रहता नहीं है।

अभी से किसलिए मैं चीख़ता हूँ,
अभी इतना तो सन्नाटा नहीं है।

हमारे दौर के अहले-क़लम[१] ने,
जो कुछ देखा है वो लिक्खा नहीं है।

समझ में आ गया ये दौर 'नाज़िश',
किसी से अब मुझे शिकवा नहीं है।

१. क़लमवाले,

रचनावर्ष सन् 1977 ईस्वी

ढले जो रात तो दाग़े-जिगर चमकता है।
हवा चले तो मेरा ज़ख़्मे-दिल महकता है।

मैं उसको ख़्वाब बताऊँ कि इन्क़िलाब कहूँ,
फ़ज़ा की गोद में साया कोई हुमकता है।

ये बात कौन बताये उभरते सूरज को,
तमाम रात फ़ज़ा में कोई सिसकता है।

न जाने कौन-सी क़द्रे-हयात[१] ख़त्म हुई,
कि आज सीनए-अर्से-रवाँ[२] कसकता है।

सवादे-इश्क़ में 'नाज़िश' ये गुनगुनाहट-सी,
मेरे ख़याल में छाला कोई तपकता है।

१.जीवन-मूल्य, जीवनादर्श, २.समकालीन समय का सीना,

रचनावर्ष सन् 1977 ईस्वी

उदास राहों पे इस तरह क्यूँ बिखर जाते।
हमें नसीब जो होता तो हम भी घर जाते।

हमारे बाद न हो तल्ख़िए-हयात का ज़िक्र,
हमीं पे काश सभी हादिसे गुज़र जाते।

ये सारे तीर लगे जो हमारे सीने पे,
न होते हम तो न जाने किधर-किधर जाते।

अजीब चीज़ थी 'नाज़िश' शुऊर की तल्ख़ी,
हम उसको याद करते कभी तो मर जाते।

१.ज़िन्दगी की तल्ख़ी, जीवन की कड़वाहट,

रचनावर्ष सन् 1972 ईस्वी

लपके थे ख़ुद से मिलने को बेइख़्तियार[१] हम।
अब मिल के अपने-आप से हैं शर्मसार हम।

अब ख़ुद को ढूँढ़ते भी नहीं बार-बार हम।
अब हो सके हैं अपने लिए साज़गार[२] हम।

लुत्फ़ो-करम के भेस में कर दिल पे कोई वार,
अय दर्द! तुझसे रहने लगे होशियार हम।

हँसते हैं अपने होंठों पे लेकर जराहतें[३],
ज़िन्दा हैं अपने दिल में छुपाकर शरार[४] हम।

आया लबों पे हर्फ़े-शिकायत न आज तक,
अय दोस्त इस क़दर तो न थे वज़्अदार[५] हम।

१.सहसा, २.अनुकूल, ३.घाव, ज़ख़्म, ४.अंगार, ५.जो सदैव एक-सा रहे, अपनी बात पर अटल रहनेवाला,

रचनावर्ष सन् 1971 ईस्वी

बन के तबस्सुम[१] ज़ेरे-लब[२]।
दर्द भी ढा जाता है ग़ज़ब।

अब होगी तख़्लीक़े-बहार[३],
दर्द हुआ है ख़न्दा-ब-लब[४]।

हुस्न तलब करता है दिल,
इश्क़ मगर है जानतलब।

उनकी निगाहे-लुत्फ़ अय दिल,
झुक गयी है अज़ राहे-अदब।

तोड़ गया ग़ुंचों[५] का सुकूत[६],
मौसमे-गुल था होश में कब।

बज़्मे-जुनूँ में अय 'नाज़िश'
एक रहे हैं तर्को-तलब[७]।

१.मुस्कुराहट, २.होंठों में, होंठों के पीछे, ३.बहार का सृजन, बसन्त-सृजन, ४.जिसके होंठों पर मुस्कान हो, अधर-स्मिति, ५.कलियों, ६.मौन, ख़ामोशी, ७.त्याग और चाह, चाहना न चाहना,

रचनावर्ष सन् 1971 ईस्वी

क्या हो गये शामिल अहले-हवस[१]।
है तेज़ बहुत आवाज़े-जरस[२]।

अब दर्द का वो आलम है कि बस।
अय अश्क मचल, अय आँख बरस।

अय सख़्त हिसारे-मह्‌रूमी[३],
हम जान गये मफ़्हूमे-क़फ़स[४]।

सहरा[५] है नज़र की वीरानी,
गुलशन है फ़क़त ख़ुश्बूए-नफ़स[६]।

हासिल हो शुऊरे-दीद[७] अगर,
इक लम्हा ठहरे एक बरस।

सहरा में फ़रोग़े-लालओ-गुल[८],
गुलशन में हुजूमे-ख़ारो-ख़स[९]।

अश्के-शबनम को सारी रात,
और ख़न्दए-गुल[१०] को एक नफ़स[११]।

१.हवसवाले, २.घण्टा-घड़ियाल, वो घण्टा जो यात्रियों के दल के पास रहता है, ३.बदक़िस्मती या असफलता का घेरा, ४. क़ैद का आशय, क़ैद का तात्पर्य, ५.मरुस्थल, ६.साँस की सुगन्ध, ७.देखने का शुऊर, ८.लाला (एक प्रकार का लाल पुष्प) और फूलों की उन्नति, ९.काँटों और घास का हुजूम, १०.फूल की मुस्कुराहट, ११.साँस,

रचनावर्ष सन् 1969 ईस्वी

क़ातिल हैं मगर शह्र में यूँ घूम रहे हैं।
जैसे कि अज़ल[१] ही से ये मासूम रहे हैं।

सदहा[२] गुलो-गुलज़ार क़दम चूम रहे हैं।
हम आबला[३] पा दश्त[४] में यूँ घूम रहे हैं।

हालात बताते हैं कि हम सख़्त गुनहगार,
एहसास ये कहता है कि मासूम रहे हैं।

दीवानों को क्या कहिए कि सहराए-तलब[५] में,
ख़ुद अपना ही नक़्शे-कफ़े-पा[६] चूम रहे हैं।

शायद नज़र आ जायें कहीं फूल के लब भी,
आवाज़ के सहराओं में हम घूम रहे हैं।

इस तल्ख़ हक़ीक़त पे यक़ीं आयेगा किसको,
जो आज हैं ज़ालिम कभी मज़्लूम रहे हैं।

गुज़रे हुए लम्हों के घने शह्र में 'नाज़िश',
तन्हा हैं मगर रात गये घूम रहे हैं।

१.अनादिकाल, जब से सृष्टि का निर्माण हुआ, २.हज़ारों, ३.पाँव में छाले लिये, ४.जंगल,
५. ख़्वाहिशों या कामनाओं का मरुस्थल, ६.पद-चिह्न, ७.जिस पर ज़ुल्म हुआ हो,

रचनावर्ष सन् 1968 ईस्वी

हुआ मालूम सरे-दार[१] पहुँचकर तन्हा।
क्यूँ हमीं शह्र में ठहरे थे पयम्बर[२] तन्हा।

इस क़दर टूट के बिखरी है मेरी ज़ात[३] कि अब,
मैं भरी बज़्म[४] में हो जाता हूँ अक्सर तन्हा।

क़ाफ़िला ले के पहुँचते हैं जहाँ अहले-हवस[५],
इश्क़ होता है उसी मोड़ पे जाकर तन्हा।

हमसफ़र दूर रहा, गर्दे-सफ़र तक भी नहीं,
ज़िन्दगी है कि सरे-राह पयम्बर तन्हा।

ग़मे-इम्रोज़[६] ने जिस लम्हा भी कुछ फ़ुर्सत दी,
यादे-माज़ी[७] ने सताया मुझे पाकर तन्हा।

अपनी आवारा-जबीनी[८] का नहीं ग़म मुझको,
फ़िक्र ये है कि न हो जाये तेरा दर तन्हा।

'नाज़िश' इक उम्र गुज़ारी है इसी हस्रत में,
काश ठहरे निगहे-दर्द मुझी पर तन्हा।

१.फाँसी, सूली, २.ईश-दूत, पैग़ाम पहुँचानेवाला, ३.अस्तित्व, व्यक्तित्व ४.सभा, महफ़िल, ५. हवसवाले, ६.आज का ग़म, वर्तमान दुख, ७.अतीत की याद, ८.जगह-जगह माथा टेकना या सज्दा करना,

रचनावर्ष सन् 1968 ईस्वी

बेहिम्मतों को रास कब आई है ज़िन्दगी।
ज़िन्दा वो हैं जिन्होंने बनाई है ज़िन्दगी।

करनी पड़ी है जंग इक-इक पल के वास्ते,
कब आदमी ने भीख में पाई है ज़िन्दगी।

इंसाँ की जरायतों[१] ने पुकारा है जिस घड़ी,
पर्दे से मौत के निकल आई है ज़िन्दगी।

तारीख़साज़[२] ठहरा है वो लम्हए-हयात[३],
जब ज़िन्दगी की राह में आई है ज़िन्दगी।

अय नामुरादे-ज़ीस्त[४] न कर मौत की दुआ,
यूँ है कि आप अपनी दुहाई है ज़िन्दगी।

ज़िन्दाने-ग़म[५] हो, ज़ह्र का प्याला हो या सलीब[६],
बेशर्त किसके सामने आई है ज़िन्दगी।

१. क्रन्दन, रुदन, २.इतिहासकार, ३.जीवन-क्षण, ४.असफल जीवन, अभागा जीवन, ५.दुखों की क़ैद, ६.लकड़ी का चौकोर क्रास जिस पर ईसा मसीह को फाँसी दी गयी थी,

कुछ मुख़्लिसाने-अस्त्र[१] को परखा है बार-बार,
कुछ इस तरह भी हमने गँवाई है ज़िन्दगी।

हमसे भी रंग माँग रहा है रुख़े-हयात,
हमको भी क़त्लगाह में लाई है ज़िन्दगी।

'फ़ानी'[२] का अहद[३] हो कि वो 'नाज़िश' का दौर हो,
इंसान की समझ में कब आई है ज़िन्दगी।

१.ऐसा समय जिसमें कोई बनावट न हो, निश्छल समय, २.'फ़ानी' बदायुँनी (एक शायर जिनका जीवन बहुत अस्त-व्यस्त और अस्थिर बीता), ३.युग, समय, काल,

रचनावर्ष सन् 1975 ईस्वी

अब* कहाँ फ़िक्रे-सुख़न[१], लुत्फ़े-कलाम[२] आज की रात।
अब्र-आलूद[३] है हर माहे-तमाम[४] आज की रात।

मेरा साया भी गया, मेरे शनासा[५] भी गये,
अब ख़ुद अपने ही से करना है कलाम, आज की रात।

सुब्ह तक मार ही डालेगी ये इक फ़िक्र मुझे,
कौन, किस लहजे में लेगा मेरा नाम, आज की रात।

ये शिफ़ाख़ाने[६] की तन्हाइए-हंगामानुमा,
मुझसे माँगे है इक-इक लम्हे के दाम, आज की रात।

इतनी बेचारगिए-ज़ीस्त कहाँ थी पहले,
ख़न्दाज़न मुझ पे है मेरा ही कलाम, आज की रात।

* बलरामपुर अस्पताल में गुज़री हुई पहली रात के तास्सुरात- नाज़िश, १.साहित्य-चिन्तन, २.वार्तालाप का आनन्द, ३.मेघाच्छादित, ४.पूर्ण चन्द्र, पूरा चाँद, ५.जान-पहचान के लोग, परिचित, ६.अस्पताल,

रचनावर्ष सन् 1973 ईस्वी

जल्वा तेरा है, नज़र तेरी है अपना क्या है।
सोचता हूँ कि ये अंदाज़े-तमाशा क्या है।

याद भी रह न गया मेरी तमन्ना क्या है।
मुझसे अब मेरे ग़मे-दिल का तक़ाज़ा क्या है।

ख़ुद से भी बरहमो-बेज़ार[१] हूँ, दुनिया क्या है।
ज़िन्दगी! बोल कि आख़िर तेरा मंशा क्या है।

दिल का इक ज़ख़्म उभर आया तबस्सुम[२] बनकर,
देर से सोच रहा था कि शगूफ़ा[३] क्या है।

ज़ख्म दिल के जो महक जायें तो क्या लालओ-गुल[४],
दिल किसी का जो उजड़ जाय तो सहरा[५] क्या है।

कब से महफ़िल में तेरी मुह्र-ब-लब[६] बैठा हूँ,
कोई इतना तो बता दे मुझे कहना क्या है।

झुक के नज़रों ने तेरी जानिए क्या समझाया,
पस्तियाँ पूछ रही थीं कि सुरैया[७] क्या है।

१.क्रुद्ध या अप्रसन्न और विमुख, २.मुस्कान, मुस्कुराहट, ३.कली, ४.पुष्प-अहिपुष्प, ५.मरुस्थल, ६.होंठों पर मुहर लगाये (आशय चुपचाप बैठने से है) ७.एक नक्षत्र का नाम (कृत्तिका) (आशय उच्च और चमकनेवाली वस्तु से है)

यूँ ही बस हाथों में चटका था कोई पैमाना,
आज महसूस हुआ है ग़मे-दुनिया क्या है।

दूर तक आस के बादल हैं न उम्मीद की छाँव,
ज़िन्दगी ये है तो जलता हुआ सहरा क्या है।

न तेरा दर्द, न दुनिया के सितम का एहसास,
फिर मेरे सीने में रह-रहके चमकता क्या है।

कर्बे-महरूमी[१] को मिल जाती है इक जाए-पनाह[२],
दोस्तो! और ग़ज़ल लिखने से होता क्या है।

मेरे हमराह न सर्वत[३] है, न मंसब, न गिरोह[४],
नाक़िदे-शेरो-सुख़न[५] से मुझे लेना क्या है।

मैं न ताजिर[६], न मुसाहिब[७], न मुनाफ़िक़[८] ठहरूँ,
मेरी ख़ातिर किसी सरकार में रखा क्या है।

लोग आयें मेरे अंदाज़े-ग़ज़ल से पूछें,
अर्ज़े-ग़म करने का दरअस्ल तरीक़ा क्या है।

आज 'नाज़िश' की तरफ़ देख, जो हो याद तुझे,
तूने पूछा था कभी दर्दे-सरापा क्या है।

१.अकिंचनता की पीड़ा, बदक़िस्मती और निराशा का दुख, २.शरणस्थली, ३.धनाढ्यता, समृद्धि, ४.गुटबाज़ी, ५.सहित्यालोचक, ६.व्यवसायी, ७.किसी बड़े आदमी के पास उठने-बैठनेवाला, पार्षद, ८.जिसके मुँह पर कुछ और पेट में कुछ और,

रचनावर्ष सन् 1974 ईस्वी

जो लोग ज़ुल्मो-ज़ोर[१] के पैकर[२] कहे गये।
कुर्सी उन्हें मिली तो पयम्बर[३] कहे गये।

बिखरे पड़े थे चारों तरफ़ बेशुमार सर,
शह्रे-ग़ज़ल में शीशओ-साग़र कहे गये।

क्यूँ अय वक़ारे-ग़म![४] तेरा दिल तो नहीं दुखा,
हम अहले-दर्द जिस घड़ी पत्थर कहे गये।

इस दर्जा बदगुमाँ[५] हैं वो हमसे कि जब कभी,
नाख़ुन बढ़े हमारे तो ख़ंजर कहे गये।

ढेरों लहू बहा तो सभी चुप रहे मगर,
दो क़तरा हाय अश्के-समन्दर कहे गये।

कहलाये चारागर[६] कि जो हैं नाशनासे-दर्द[७],
जो बेशुऊरे-फ़न हैं सुख़नवर कहे गये।

१.अन्याय एवं अत्याचार, २.रूप एवं प्रतिरूप, ३.अवतार, ईश-दूत, ४. ग़म की शोभा, ग़म की इज़्ज़त, ५.किसी के बारे में ग़लत सोचना, ६.चिकित्सक, उपचारक, ७.दर्द से अपरिचित, निष्ठुर,

काग़ज़ पे संगो-ख़िश्त[१] से बदतर जो लोग हैं,
पहुँचे जो महफ़िलों में तो गौहर[२] कहे गये।

दीदावराने-शह्रे-अदब[३] का है मोजिज़ा[४],
सब रेज़ा[५] हाय संगे-जवाहर[६] कहे गये।

तूफ़ाँ से लड़नेवालों का पुर्सां[७] नहीं कोई,
साहिल पे जो रहे वो शनावर[८] कहे गये।

आये जो उँगलियों में लगाये हुए लहू,
सुनते हैं वो शहीदों से बेहतर कहे गये।

कुंजे-क़फ़स[९] से ले के चमन की फ़ज़ाओं तक,
'नाज़िश' गुनाहगार हम अक्सर कहे गये।

१.कंकड़-पत्थर, २.मोती, ३.शहर के साहित्य-मर्मज्ञ, ४.चमत्कार, अनोखी बात, ५.कण, किरच, ६.रत्न-समूह, 'जौहर' का बहुवचन, ७.पूछनेवाला, ८.तैराक, ९. क़ैदखाने का कोना,

रचनावर्ष सन् 1972 ईस्वी

वक़्त आया है तो मैं हूँ, मेरी तन्हाई।
शह्र में वरना हज़ारों से शनासाई[1] है।

सीनओ-दिल की इक-इक चोट उभर आई है।
यादे-माज़ी[2] है कि चलती हुई पुरवाई है।

मैं उड़ा फिरता हूँ सूखे हुए पत्ते की तरह,
दश्ते-एहसास[3] से वो तेज़ हवा आई है।

अजनबी शह्र में लगती है नयी चीज़ मुझे,
वर्ना तन्हाई से मुद्दत की शनासाई है।

मेरे ख़्वाबों से कहो अब मेरा पीछा छोड़ें,
धूप दीवारों से आँगन में उतर आई है।

आनेवाला न हो कोई भी मगर चौंक पड़ूँ,
सादगी ने मेरी क्या सख़्त सज़ा पाई है।

तल्ख़िए-अहदे-गुज़िस्ता[4] से बचाकर नज़रें,
यादे-अहबाब[5] दबे पाँव चली आई है।

'नाज़िश' अब कोई मेरे हाल का पुर्सां न रहा,
आदते-कमसुख़नी[6] अब मेरे काम आई है।

१.परिचय, २.अतीत की याद, ३.एहसास का जंगल, ४.बीते ज़माने की तल्ख़ी, ५.मित्रों की याद, ६.कम बोलने की आदत, मितभाषिता

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

यूँ लोग चौंक-चौंक के उँगली उठाये हैं।
जैसे हम आज पहले-पहल मुस्कुराये हैं।

फ़ुर्सत कहाँ नसीब क़यामो-क़रार[१] की,
हम लोग वक़्ते-शाम दरख़्तों[२] के साये हैं।

वो ज़िन्दगी मिली है कि हम अपने घर में भी,
महसूस कर रहे हैं कि परदेस आये हैं।

अय मौजे-गुल! दहर का अभी रुख़ न कीजियो,
कुछ लोग ताज़ा-ताज़ा बयाबाँ में आये हैं।

अफ़सुर्दगिए-ज़ीस्त[३] छिपाये न छिप सकी,
हालाँकि बात-बात पे हम मुस्कुराये हैं।

चेह्रे पे पड़ रही है तेरी बेरुख़ी की धूप,
सीने में हर तरफ़ तेरी यादों के साये हैं।

दामन में अपने ले के उन्हें कब तलक फिरें,
हम पर हमारे घर ने जो पत्थर चलाये हैं।

१.स्थिरता और सुकून, २.वृक्षों, ३.जीवन की उदासीनता,

क्यूँ नाक़िदाने-शेरो-सुख़न[१] से गिला करें,
अक्सर तो अपना नाम तलक भूल जाये हैं।

दश्ते-जूनूँ[२] में ढेर गुलों का था जिस जगह,
शायद वहाँ किसी के क़दम डगमगाये हैं।

जो बच रहे थे यूरिशे-बर्क़ो-शरर[३] के बाद,
वो आशियाने आतिशे-गुल ने जलाये हैं।

ज़ब्ते-ग़मे-हयात[४] भी जिनको न पी सका,
'नाज़िश' वो अश्क मैंने ग़ज़ल में छिपाये हैं।

१.साहित्यालोचकों, २.जुनून (उन्माद) का जंगल, ३.बिजली और अंगारों के आक्रमण,
४.जीवन के दुखों की सहनशीलता,

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

उठी जो आह वो जामे-ग़ज़ल में ढाल दी मैंने।
शिकायत की है यूँ बेरहमिए-हालात की मैंने।

कहीं दस्ते-तलब[१] ख़ाली पलट आया तो क्या होगा,
नहीं माँगी है इस डर से दुआए-मौत भी मैंने।

किसी पर क्या खुलेगा अब ग़मे-बेचारगी मेरा,
कि जबरन् मुस्कुरा देने की आदत डाल ली मैंने।

बसर कर ली ख़ुद अपनी ज़िन्दगी ही के जहन्नुम में,
मगर ख़ैरात में बँटती हुई जन्नत न ली मैंने।

बहुत कुछ जी जलाया है, बहुत कुछ ख़ून थूका है,
कहीं जब जाके पायी फ़िक्रो-फ़न की ताज़गी मैंने।

बहुत मद्धम, बहुत कम है मगर जो कुछ है अपनी है,
किसी सूरज से माँगी तो नहीं ये रोशनी मैंने।

वतन के ज़ीहशम[२] लोगों से इतना भी न हो पाया,
उजाला कम-से-कम परतापगढ़ का नाम ही मैंने।

कहाँ रौशन हुआ यूँ ही चराग़े-शायरी 'नाज़िश',
दिया है इसको अपनी ज़िन्दगी का ख़ून भी मैंने।

१.याचना का हाथ, २.वैभवशाली,

रचनावर्ष सन् 1970 ईस्वी

तारीख़[१] के सफ़्हों[२] पे जो इंसान बड़े हैं।
इनमें बहुत ऐसे हैं जो लाशों पे खड़े हैं।

टूटे वो चराग़ अंजुमने-नौ में पड़े हैं।
माहौल की ज़ुल्मत[३] से जो तासुब्ह लड़े हैं।

क्या-क्या न हमें घर की उदासी से गिला था,
अब शह्र में निकले हैं तो हैरान खड़े हैं।

सूरज जो चढ़ेगा तो सिमट जायेंगे ये लोग,
साये की तरह क़द से जो दो हाथ बड़े हैं।

दीवार न ढायें कोई रौज़न[४] ही बनायें,
इक उम्र से हम घर के अँधेरे में पड़े हैं।

बाक़ी न रही शह्र में पुर्से[५] की रिवायत[६],
हम अपना जनाज़ा लिये मुद्दत से खड़े हैं।

१.इतिहास, २.पृष्ठों, ३.अन्धकार, ४.रोशनदान, ५.हालचाल पूछना, ६.परम्परा,

यादों के घने शह्र में क्यूँकर कोई निकले,
हर फ़र्द[१] के पीछे कई अफ़्राद[२] खड़े हैं।

सदियाँ हैं कि गुज़री ही चली जाती हैं दिल पर,
लम्हें हैं कि एक उम्र से चुपचाप खड़े हैं।

काँधे पे चढ़े लोगों की इस भीड़ में 'नाज़िश',
ख़ुश हैं कि हम आप अपने ही पैरों पे खड़े हैं।

१.व्यक्ति, २.'फ़र्द' का बहुवचन,

रचनावर्ष सन् 1969 ईस्वी

आस के बादल नहीं आवाज़ का साया नहीं।
रहगुज़ारे-ज़ीस्त[१] में फिर भी कोई तन्हा नहीं।

ये भी सच है आश्नए-दर्दे-दिल[२] मिलता नहीं।
ये भी कहते शर्म आती है कोई अपना नहीं।

चीख़ता हूँ अपनी ही वीरानिए-दिल देखकर,
वर्ना मेरे शह्र में इतना भी सन्नाटा नहीं।

इस तरह ख़ाली निगाहों से तका करता हूँ अब,
जैसे तुम तो ख़ैर तुम हो मैं भी ख़ुद अपना नहीं।

सिर्फ़ अपनी ख़ुदकलामी[३] लिख लिया करता हूँ मैं,
आज तक फ़न्ने-ग़ज़ल[४] कोई मुझे आया नहीं।

हर ग़ज़ल में हल्के-हल्के ग़म की मौजे-तहनशीं[५],
ज़िन्दगी की देन का 'नाज़िश' को अन्दाज़ा नहीं।

१.जीवन-पथ, २.दिल के दर्द को पहचाननेवाला, ३.अपने-आप से बातचीत करना, आत्मालाप, ४. ग़ज़ल की कला, ग़ज़ल-सृजन की कला, ५.गहरी लहर, नीचे बैठी हुई लहर,

रचनावर्ष सन् 1968 ईस्वी

दर्दे-बेहद को निशाते-दिल[१] बता देता हूँ मैं।
यानी जीता हूँ तो जीने का सिला देता हूँ मैं।

ख़ूब हँस लेता हूँ बज़्मे-दोस्ताँ में बैठकर,
अक्सर अपने आपको यूँ भी सज़ा देता हूँ मैं।

या ये हालत है कि मैं शह्रों में भी रहता था चुप,
या ये आलम है कि सहरा[२] में सदा देता हूँ मैं।

ज़िन्दगी कुछ इस तरह खिंचकर मिली मुझसे कि अब,
इन्तिक़ामन् सबको जीने की दुआ देता हूँ मैं।

तिश्नालब[३] होकर भी रख लेता हूँ साक़ी का भरम,
अपना ख़ाली जाम हाथों से गिरा देता हूँ मैं।

चीख़-चीख़ उठती हैं हर्फ़ो-लफ़्ज़ की मज्बूरियाँ,
दर्द को जिस लम्हा रूप अश्आर[४] का देता हूँ मैं।

अब न पाने की तमन्ना है, न खोने का मलाल,
'नाज़िश' अपनी बेदिमाग़ी को दुआ देता हूँ मैं।

१.दिल की ख़ुशी, २.मरुस्थल, ३.प्यासा, ४.शेर का बहुवचन,

रचनावर्ष सन् 19680 ईस्वी

ज़ख़्मे-दिल लाख छिपाता हूँ गुनाहों की तरह।
खुल ही जाते हैं मगर शोख़ निगाहों की तरह।

यूँ जिये जाते हैं बेउज्र[१] मेरे अहद[२] के लोग,
जैसे धरती पे हों रौंदी हुई राहों की तरह।

अय नयी नस्ल न ले हमसे इक-इक पल का हिसाब,
हमने कुछ उम्र बसर की है कराहों की तरह।

मुझको अपनी शबे-तन्हाई भी रास आ न सकी,
बेबसी लिपटी थी महबूब की बाहों की तरह।

आपकी याद अब आये भी तो मह्सूस न हो,
दिल है देहात की सोयी हुई राहों की तरह।

क्या ज़माना है अब ज़िक्रे-वफ़ा, नामे-ख़ुलूस[३],
आदमी होंठों पे लाता है कराहों की तरह।

ज़ीस्त[४] को हमसे मिली उम्रे-दवाम[५] अय 'नाज़िश',
ज़ीस्त थी वर्ना उचटती-सी निगाहों की तरह।

१.वो जिससे जो कुछ कहा जाय उसे तुरन्त करे (आशय बिना अपनी सोच और इच्छा के प्रत्येक कार्य के लिए तत्पर हो जाने से है), २.युग, ३.निश्छलता या निष्कपटता का नाम, ४.जीवन, ५.शाश्वतता,

रचनावर्ष सन् 1966 ईस्वी

कू-ब-कू[१] फिरते हैं इस दौर में हम आवारा।
थे तो पहले भी मगर आज से कम आवारा।

जाने कब हमसे हुआ जुर्मे-तबस्सुम सरज़द[२],
आज तक फिरते हैं बा दीदए-नम[३] आवारा।

ज़िन्दगी! तेरी मुरव्वत में टिके हैं कुछ देर,
वर्ना हम लोग नहीं वक़्त से कम आवारा।

हमसफ़र हो तो गयी है मगर अय गर्दिशे-वक़्त[४],
ये न पूछा कि किधर जायेंगे हम आवारा।

ये अलग बात कि दुनिया इसे दर-दर ले जाय,
फ़ित्रतन[५] हो नहीं सकता तेरा ग़म आवारा।

लज़्ज़ते-दर्द के झोंकों ने ठहरने न दिया,
मत्लए-ग़म[६] पे रहा अब्रे-करम[७] आवारा।

१.गली-गली, जगह-जगह, २.घटित, ३.नम आँखों से, ४.काल-चक्र, ५.स्वभावतः,
६. ग़म की शुरूआत, ७.कृपा के बादल,

अय जुनूँ ख़ैर हो तेरी कि फिर इक मुद्दत से,
न हुआ कोई भी पर्वदए-ग़म[१] आवारा।

नित नये भेस बदलता है ज़हानत[२] का फ़रेब,
जाने किस मोड़ पे हो जाये क़लम आवारा।

'नाज़िश' इस दौर में अल्फ़ाज़ के मानी बदले,
घर पे रहते हुए कहलाते हैं हम आवारा।

---

१. ग़म का पाला हुआ, २.बुद्धिमता, सूझबूझ,

रचनावर्ष सन् 1953 ईस्वी

आँच जब काकुलो-रुख़्सार[१] तक आ जाती है।
बात पाज़ेब से तल्वार तक आ जाती है।

कोई माहौल की ज़ुल्मत[२] से लड़े या न लड़े,
रात ख़ुद सुब्ह के आसार तक आ जाती है।

ख़ाक हो कोई नशेमन कि कोई जले कोई क़फ़स,
आँच हर हाल में गुलज़ार[३] तक आ जाती है।

हाय क्या-क्या तेरी उल्फ़त के मज़े मिलते हैं,
जब तमन्ना लबे-इज़्हार तक आ जाती है।

ये मेरी तल्ख़नवाई[४] भी है इस बज़्म की देन,
बात जो बढ़ती है तक्रार तक आ जाती है।

१.कपोल और अलकें, २.अँधेरा, ३.उद्यान, वाटिका, ४.तल्ख़ स्वर, कटुस्वर, (आशय कटु स्वर बोलनेवाले से है)

रचनावर्ष सन् 1959 ईस्वी

नग़्मा हो तो ग़ैरों के सीनों में उतर जाये।
नाला[१] हो तो ख़ुद अपने होंठों ही पे मर जाये।

आँखों से तो गिरने पे दामन का सहारा है,
नज़रों से जो गिर जाये वो अश्क किधर जाये।

दिल टूटे तो अपने भी महसूस नहीं करते,
चटके जो कोई ग़ुंचा[२] ता दूर ख़बर जाये।

कलियों से कोई पूछे उस दर्द की लज़्ज़त को,
जो दर्द हँसी बनकर होठों पे बिखर जाये।

हद दर्जा भयानक है तस्वीरे-जहाँ 'नाज़िश',
देखे न अगर इंसाँ कुछ ख़्वाब तो मर जाये।

१.आर्त्तनाद, २.कली, ३.दूर तक,

रचनावर्ष सन् 1951 ईस्वी

आया है काम जज़्बए-वहशत[१] कभी-कभी।
पायी है साँस लेने की मोह्लत कभी-कभी।

रंगीनिए-हयात[२] बढ़ाने के वास्ते,
होती है हादिसों की ज़ुरूरत कभी-कभी।

जबरन लबों को देके तबस्सुम[३] की सूरतें,
करता हूँ मैं भी मश्क़े-सियासत[४] कभी-कभी।

मालूम है दुआ की हक़ीक़त मुझे मगर,
करता हूँ एहतरामे-रवायत[५] कभी-कभी।

यूँ तो शबे-फ़िराक़[६] क़यामत से कम न थी,
फिर भी बहल गयी है तबीअत कभी-कभी।

'नाज़िश' यही नहीं कि हो ग़म ही से वास्ता,
खाता भी हूँ फ़रेबे-मसर्रत[७] कभी-कभी।

१.आदमियों से भड़कना, सबसे अलग रहना, २. ज़िन्दगी की रंगीनियाँ, ३.मुस्कुराहट, ४.राजनीति का अभ्यास, ५.परम्परा का सम्मान, ६.वियोग की रात, ७. ख़ुशी का भ्रम

रचनावर्ष सन् 1952 ईस्वी

मैकदे में जो साग़र उछाले गये।
लोग उन्हें माहो-अंजुम[१] बना ले गये।

देर तक वादिए-ग़म महकती रही,
दूर तक मेरे पैरों के छाले गये।

रात जब भी रुकी, साँस जब भी घटी,
फूल ढाले गये, जाम उछाले गये।

देखते ही रहे अपनी ज़ंजीर हम,
उड़नेवाले क़फ़स[२] भी उड़ा ले गये।

जम के चलते रहे जितने सेराब[३] थे,
तिश्नालब[४] हर क़दम पर सँभाले गये।

बात उछाली गयी उनके अल्ताफ़[५] की,
अपने ज़ख़्मे-जिगर देखेभाले गये।

मैंने ज़ाहिर किया दर्दे-दिल उस घड़ी,
उठ के महफ़िल से जब रोनेवाले गये।

१.चाँद-तारे, २. क़ैद, ३.तृप्त, ४.प्यासा, ५.कृपाएँ, मेहरबानियाँ,

रचनावर्ष सन् 1950 ईस्वी

मिलेगी हूर किसे इक हसीं की बात करें।
बहुत बुलन्द है जन्नत, ज़मीं की बात करें।

बुझे-बुझे से हैं जब आस्मान के तारे,
तो फिर न क्यूँ किसी ज़ुह्राजबीं[१] की बात करें।

समझ रहे हैं अभी तो ज़मीं की रिफ़्अत[२] को,
मिले जो वक़्त तो अर्शे-बरीं[३] की बात करें।

बढ़ो कि शोलए-तक़्दीर हर्फ़े-बेमानी,
उठो कि आदमे-दौरे-आफ़रीं की बात करें।

रहेंगे मह्व बगूलों की मद्ह में कब तक,
चलो कि लैला-ए-मुह्मिलनशीं की बात करें।

किसी के दर का, किसी रहगुज़र का ज़िक्र नहीं,
जो तुम सुनो तो हम अपनी जबीं की बात करें।

१.सुन्दर स्त्री, २.उच्चता, श्रेष्ठता, ३.सातवाँ आस्मान,

हम अहले-ज़ीस्त[१] की ख़ातिर हसीन है दुनिया,
जो मर गये वो बिहिश्ते-बरीं[२] की बात करें।

उभर रहे हैं उजाले, निखर रही है हयात,
फ़क़त गुमाँ ही नहीं अब यक़ीं की बात करें।

जो आदमी हों वो इंसानियत के गुन गायें,
जो आदमी न हों वो कुफ़्रो-दीं[३] की बात करें।

१.जीवनधारी, २.सबसे ऊँचा स्वर्ग, ३.धर्म इत्यादि,

रचनावर्ष सन् 1949 ईस्वी

बज़्म तो सजी होती, दौर तो चला होता।
जाम हम तक आ जाता फिर झलक गया होता।

गर तेरी इनायत का सिल्सिला रहा होता।
ग़म जो आज शोला है दाग़ बन गया होता।

ज़ीस्त[१] की मुरव्वत ने रोक ली ज़बाँ वर्ना,
इश्क़ ने मसर्रत[२] को कुफ़्र[३] कह दिया होता।

बाइसे-सुकूँ[४] होती आज अपनी नाकामी,
काश एक ही सज्दा ख़ुद को भी किया होता।

हम भी देखते कोई कैसे मुस्कुराता है,
हाथ से किसी के और जाम छिन गया होता।

दिल को मुत्मइन[५] पाकर वार कर गयी दुनिया,
हम सँभल गये होते ग़म अगर नया होता।

वो तो ख़ैरियत गुज़री ग़म ने गोद फैला दी,
वर्ना हज़रते-'नाज़िश' कौन आप का होता।

१.ज़िन्दगी, २. ख़ुशी, प्रसन्नता, ३.नास्तिकता, ४.सुकून का कारण, ५.जिसे इत्मीनान हो, ख़ुशहाल,

परिशिष्ट

(*Appendix*)

(यहाँ नाज़िश साहब की विभिन्न किताबों की संक्षिप्त जानकारी प्रस्तुत की जा रही है। इन किताबों के बारे में सूचना एकत्र करने में जनाब इम्तियाज़ुद्दीन ख़ाँ साहब से काफ़ी मदद मिली। उनके पास नाज़िश साहब की लगभग सभी किताबें उपलब्ध थीं। जो किताबें उपलब्ध नहीं थीं उनके बारे में भी उन्होंने ज़बानी जानकारियाँ दी। एक अदीब, अदबपसन्द, अदबनवाज़, नक़्क़ाद और एक अच्छे इंसान होने के साथ-साथ इम्तियाज़ साहब नाज़िश साहब के समकालीन शायरों और उनके यारों में रहे हैं। हमने उनकी उपलब्ध करायी हुई सामग्रियों और सूचनाओं को प्रामाणिक मानते हुए यहाँ एक सूची दर्ज की है। हालाँकि उत्तरोत्तर सूचनाएँ एकत्र करने का क्रम अभी जारी है। - सम्पादक)

1. सन् **1950** के दिसम्बर में '**लकीरें**' नाम से ग़ज़लों का संग्रह प्रकाशित हुआ। इसकी क़ीमत थी एक रुपया और इसमें मिलने का पता लिखा था 'एस. वी. वाच कम्पनी', कचेहरी रोड, प्रतापगढ़। इसकी भूमिका 'हर्फ़े-अव्वल' शीर्षक से नियाज़ फ़तेहपुरी ने लिखी थी, जिन्होंने सन् 1922 में लखनऊ से उर्दू के एक गम्भीर आलोचनात्मक पत्र 'निगार' का प्रकाशन आरम्भ किया था। इसी संग्रह के शुरूआत में 'इशारे' शीर्षक से नाज़िश साहब से सम्बन्धित थोड़े-थोड़े विचार डॉ. सैयद मुहीउद्दीन क़ादिरी 'ज़ोर' (इरादा-ए-अदबीयात-ए-उर्दू, हैदराबाद के संस्थापक), प्रो. सैयद एजाज़ हुसैन (पूर्व उर्दू-विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय), शफ़ीक़ सिद्दीक़ी जौनपुरी, माहिरुल क़ादिरी (कराची, पाकिस्तान), एजाज़ सिद्दीक़ी (उर्दू मासिक 'शायर' के पूर्व सम्पादक) के दिये गये हैं। इसी ग़ज़ल-संग्रह में 'मेरी ग़ज़लें' शीर्षक से नाज़िश साहब ने अपने विचार भी व्यक्त किये हैं।

2. सन् **1960** में **'नवा-ए-ईमाँ'** नाम से नातों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ। इसकी भूमिका के रूप में 'हर्फ़े-आग़ाज़' साजिद सिद्दीक़ी और वाली आसी ने लिखा था।

3. सन् **1963** में **'हिन्दुस्तान जाग उठा'** नाम से नज़्मों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ। इसका मूल्य 75 नया पैसा था और इसका मुद्रण 'विजय प्रेस, पल्टन बाज़ार, प्रतापगढ़' में हुआ था। ये संग्रह भारत-चीन युद्ध से प्रभावित होकर लिखा गया था। इसकी भूमिका प्रसिद्ध मार्क्सवादी आलोचक प्रो.एहतेशाम हुसैन(पूर्व उर्दू-विभागाध्यक्ष, इलाहाबाद विश्वविद्यालय) ने लिखी थी तथा कवर के अन्तिम पृष्ठ पर नाज़िश साहब के बारे में फ़िराक़ गोरखपुरी का लिखा हुआ वक्तव्य छपा था।

4. एक नज़्म-संग्रह सन् **1967** में **'ज़िन्दगी से ज़िन्दगी की तरफ़'** प्रकाशित हुआ। इसकी क़ीमत एक रुपया थी तथा ये 'नेशनल आर्ट प्रिण्टर्स, सरायगढ़ी, इलाहाबाद' में मुद्रित हुआ था। इसकी तादाद एक हज़ार थी तथा इसकी भूमिका 'पेश लफ़्ज़' शीर्षक से सैयद एहतेशाम हुसैन ने लिखा था। दुबारा फिर इसकी एक हज़ार प्रतियाँ 'नामी प्रेस, लखनऊ' से सन् **1976** में कुछ 'तर्मीम-ओ-इज़ाफ़ा के साथ' मुद्रित हुईं।

5. सन् **1969** में **'लकीरें'** का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ जिसमें प्रथम संस्करण की ग़ज़लों के साथ कुछ और ग़ज़लों का इज़ाफ़ा भी हुआ था। इसकी भूमिका 'तआरुफ़' शीर्षक से शायर ग़ुलाम रब्बानी 'ताबाँ' (निदेशक, मक्तबा जामिया, दिल्ली) ने लिखा था।

6. दिसम्बर सन् **1971** में एक काव्य-संग्रह **'क़दम-क़दम'** नाम से प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका फ़िराक़ गोरखपुरी ने 'हर्फ़े-चन्द' नाम से लिखा था। इसकी क़ीमत दो रुपये थी तथा ये संग्रह 'शाही प्रेस, लखनऊ' से मुद्रित हुआ था। इसमें मिलने का पता 'बज़्मे-उर्दू अदब, बेगम वार्ड, प्रतापगढ़', 'मक्तबा-ए-दीनो-अदब, लाटूश रोड, लखनऊ' तथा 'मक्तबा-ए-क़सराउल अदब, पो. बा.-4526, बम्बई' लिखा था।

7. सन् **1980** में एक नज़्म-संग्रह **'नया साज़ नया अंदाज़'** नाम से प्रकाशित हुआ। इसकी क़ीमत पन्द्रह रुपये पैंतीस पैसे थी तथा ये 'उत्तर प्रदेश उर्दू एकेडमी, लखनऊ से प्रकाशित हुआ था। इसकी भूमिका अली जव्वाद ज़ैदी ने लिखा था। तीन सौ छिहत्तर पृष्ठों के इस बड़े ग्रन्थ का आन्तरिक विभाजन भी

पाँच विभिन्न उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया गया था– *'अपनी मह्फ़िल अपनी बात', 'इरादत-ओ-अक़ीदत', 'गुलाब की बात', 'हिन्दुस्तान जाग उठा'* और *'जिहादे-आज़ादी'*।

8. नवम्बर **1981** में 'उत्तर प्रदेश उर्दू एकेडमी, लखनऊ' के आर्थिक सहयोग से एक नज़्म-संग्रह **'दुर्दे-तहे-जाम'** प्रकाशित हुआ। इसकी क़ीमत बीस रुपये थी तथा ये 'तनवीर प्रेस, लखनऊ' से छपा था। इसकी भूमिका डॉ. मुजाविर हुसैन रिज़्वी ने 'हर्फ़े-राज़' शीर्षक से लिखा था।

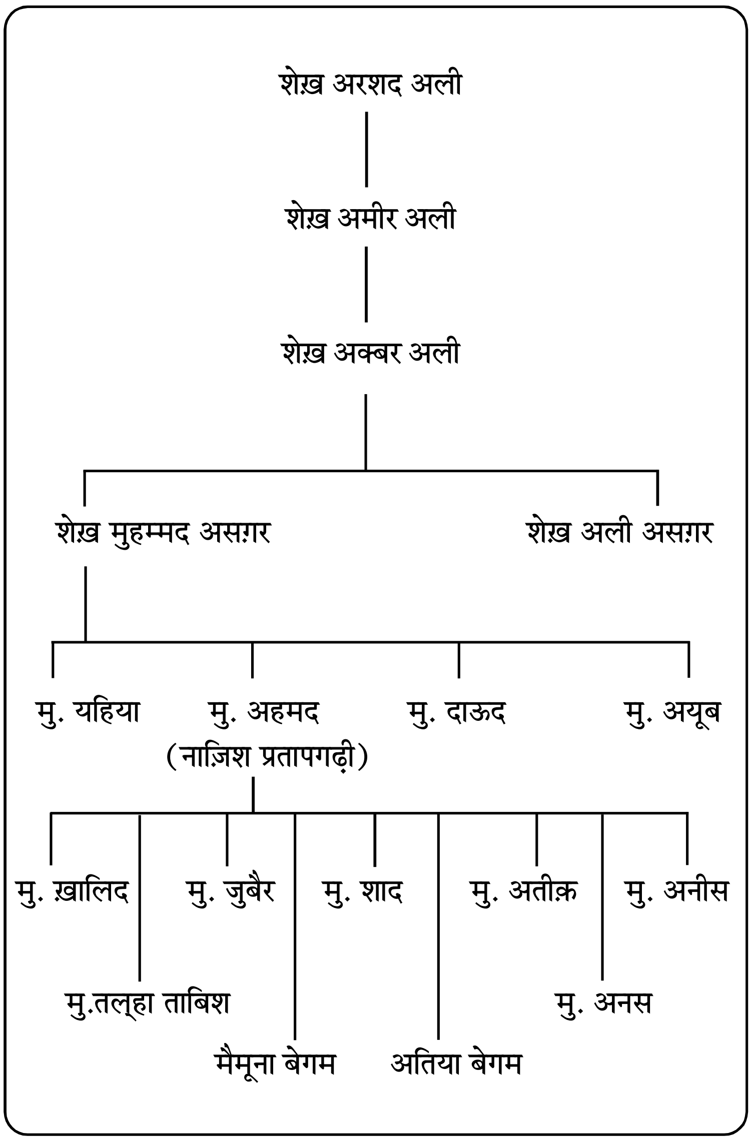
9. जनवरी **1983** में एक नात-संग्रह **'नग़्मा-ए-सरमदी'** नाम से प्रकाशित हुआ। ये संग्रह 'तनवीर प्रेस, लखनऊ' से छपा था तथा इसकी क़ीमत दस रुपये थी और इसमें मिलने का पता 'बज़्मे-उर्दू अदब, 97/6, बेगमवार्ड, प्रतापगढ़' एवं 'मक्तबा-ए-दीनो-अदब, लखनऊ' लिखा था।

10. जुलाई **1983** में **'ख़ाके और लकीरें'** नाम से ग़ज़लों का एक संग्रह 'उत्तर प्रदेश उर्दू एकेडमी, लखनऊ' के आर्थिक सहयोग से प्रकाशित हुआ हुआ। इसको तर्तीब दिया था हसीब मग़मूम और याद देहलवी ने। इसके कातिब थे असद ज़फ़र और इस पर क़ीमत नहीं लिखी थी। इस संग्रह का आन्तरिक विभाजन *'ख़ाके'* और *'लकीरें'* शीर्षकों से किया गया था। *'ख़ाके'* शीर्षक में नयी ग़ज़लें थीं तथा *'लकीरें'* शीर्षक में दो उपखण्डों के तहत उन्हीं ग़ज़लों को संकलित किया गया था जो सन् **1950** तथा **1969** में *'लकीरें'* प्रथम संस्करण और द्वितीय संस्करण के नाम से प्रकाशित हो चुकी थीं।

11. सन् **1985** के अगस्त में **'अपनी धरती अपनी बात'** नाम से नज़्मों का एक संग्रह 'उत्तर प्रदेश उर्दू एकेडमी, लखनऊ' से प्रकाशित हुआ। इसकी तादाद एक हज़ार थी और क़ीमत चार रुपये थी तथा इसका 'पेश लफ़्ज़' एकेडमी की ओर से मु. रज़ा अंसारी ने लिखा था।

उपर्युक्त किताबों (काव्य-संग्रहों) के अलावा **'जहाँ और भी हैं'** (नज़्मों का संग्रह) तथा **'चर्ख़े-वतन के मह्रो-माह'** (पौराणिक तथा ऐतिहासिक महापुरुषों पर लिखी नज़्मों का संग्रह) ऐसी किताबें हैं, जिनके बारे में फ़िलहाल इस ग्रन्थावली(भाग-एक) के सम्पादन तक कोई सन्तोषजनक सूचना नहीं मिल सकी थी। आशा है अगले भाग के सम्पादन तक हम और जानकारियाँ इकट्ठी कर सकेंगे।

नाज़िश-वंशावली


शेख़ अरशद अली
शेख़ अमीर अली
शेख़ अक्बर अली
शेख़ मुहम्मद असग़र
शेख़ अली असग़र
मु. यहिया
मु. अहमद
(नाज़िश प्रतापगढ़ी)
मु. दाऊद
मु. अयूब
मु. ख़ालिद
मु. जुबैर
मु. शाद
मु. अतीक़
मु. अनीस
मु.तल्हा ताबिश
मु. अनस
मैमूना बेगम
अतिया बेगम